केरल ज्योति

सितंबर 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

सभा की परीक्षाओं एवं सुगम हिन्दी परीक्षाओं के रैंक जेताओं को पुरस्कार वितरण के विविध दृश्य

केरलज्योति
केरल हिंदी प्रचार सभा
की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की
वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 6 अंक: **सितंबर 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय	5
श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर**	6
कोणार्क नाटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन - **डॉ. धन्या.बी**	13
वसीयत के वृद्ध-पक्ष - **डॉ. षाजी.एन.**	16
'परिवर्तन' और 'ओड ऑन इंटिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी' का तुलनात्मक अध्ययन - दार्शनिक धरातल पर - **डॉ. कला.ए.**	19
परिवेशगत यथार्थ के बीच : फणीश्वरनाथ रेणु - **डॉ. अनिता.पी.एल.**	24
मानस कैलास - **मूल : मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम**	28
नारी मनोविज्ञान की अंतर्धाराओं में लज्जा सर्ग **डॉ.सौम्या.सी.एस.**	30
संजीव के उपन्यासों में वर्णित जनजाति समाज का यथार्थ **डॉ निर्देश चौधरी**	35
'फायर' : जलती इच्छाओं की कथा - **नीतू.यू.वी**	39
निर्मल वर्मा की कहानियों में माँ का बदलता स्वरूप **जास्मिन मेरी.पी.जे.**	43
मध्यकालीन राजस्थान में सामाजिक जीवन – **सलिल श्रीवास्तव**	46
'काला पादरी' उपन्यास में आदिवासी जीवन **डॉ. लक्ष्मी.एस.एस**	50
देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना**	54
ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**	56
प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम**	58

मुखचित्र : डॉ.एस. उण्णिकृष्णन नायर,
विश्वविख्यात वैज्ञानिक एवं निदेशक वी.एस.एस.सी.

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
सितंबर 2024

संपादकीय

देश की उन्नति अपनी भाषा से ही

20 अप्रैल 1935 को हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में 24 वें अधिवेशन के अध्यक्ष की हैसियत से गाँधीजी ने कहा कि भारत को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने हिंदी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। अहिंदी प्रांतों में रहनेवालों, विद्वानों एवं चिंतकों ने हिंदी की वकालत की। उनमें सर्वश्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, लाला लजपत राय, विपिनचंद्र पाल एवं बालगंगाधर तिलक जैसे प्रमुख व्यक्ति शामिल थे जिन्होंने हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। भारतीय ही नहीं बल्कि विदेशी विद्वानों ने भी हिंदी का समर्थन किया जिनमें ब्रिटेन के गिलक्राइस्ट, जॉन इब्राहिम गियर्सन, फादर बुल्के, सोवियत रूस के वारान्निकोव, जर्मनी के आंद्रे, जापान के डॉ.तोनियोलियोवानी एवं चेकोस्लोवोकिया के डॉ.मेकर के नाम उल्लेखनीय हैं। हिंदी को आगे बढ़ाने में इन मनीषियों का योगदान अत्यंत मूल्यवान रहा है। हमें मालूम है कि मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम जैसे देश दृष्टांत हैं जो कि हिंदी को बढ़ा रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि अनेक देशों में वहाँ के हिंदी प्रेमियों द्वारा कवि सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं और अनेक पत्र-पत्रिकायें भी हिंदी में प्रकाशित की जा रही हैं। इस बात के प्रमाणस्वरूप ब्रिटेन की 'पुरवाई' अमरीका की 'विश्व' और जापान की 'हिंदी जगत' विद्यमान हैं।

भारत के जो लोग यह सोचते हैं कि अंग्रेजी के बिना उन्नति नहीं की जा सकती वे लोग चीन और जर्मनी से सबक सीखें। भारत के कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बहुत पहले ही कहा था कि 'निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिना निजभाषा ज्ञान के मिटे न हिय का शूल'। असल में हिंदी के विकास में सबसे बड़ी बाधा है मानसिक रूप से अन्य देशों की गुलामी और अपने स्वाभिमान की कमी है। आत्मगौरव से ही भाषा की समस्या का समाधान निकाला जा सकता है जिसके लिए हमें अपने भीतर झाँकना पड़ेगा।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - प्रतत क्रांति की फलश्रुति

डॉ. रंजीत रविशैलम

इलियट ने लिखा था-कविता को समझने के लिए कवि को समझना बहुत आवश्यक नहीं है। श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य रचना के पीछे के ध्येय ध्यामन् को हम उक्तपंक्तियों से जोड़कर देख सकते हैं कि यहाँ भी कवि ने स्वयं की स्थापना से बढ़कर महान् संत श्रीनारायणगुरु एवं उनके सुकर्मो के प्रतिष्ठापन को महत्व दिया है। अर्थात् 'श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य' स्वतः सिद्ध एवं संपूर्ण महाकाव्य है। शनैः शनै रूपायित इस भव्य महाकाव्य के रचनाकार महामना प्रोफ.डी.तंकप्पन नायरजी हैं। मैंने इस कृति का आस्वादन सम्यक अध्ययन- विश्लेषण की दृष्टि से ही किया है। कल्पनानिर्धारण का कोई सीमानिर्धारण अब तक संभव हुआ नहीं है, इसलिए ही ऐसा साहस मैं कर पा रहा हूँ।

आचार्यवर प्रो. डी. तंकप्पन नायरजी ने परम सुगंधित पुष्पार्चन से भारतीय वाङ्मय की श्रीवृद्धि की है। आपका मन हमेशा एक सहृदय का रहा है। सहृदयत्व पाना क्लिष्टसाध्य कार्य है। इस हेतु अटूट-अखंड और अथक प्रफुल्लित मानस प्रसून प्रकट करना अनिवार्य होता है। अत्यंत आह्लाद एवं भक्तिचित्त से ही कोई आपके साहित्य-प्रयासों और प्रदेयों को अनुभूत कर पाएगा। गुरु पर रचित यह महाकाव्य, वर्तमान को नवीनता प्रदान करता है और साथ में अतीत को अर्थवान भी बनाता है।

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध भारत के संदर्भ में नवजागरण काल रहा है। पुण्यश्लोक महान क्रांतिकारी संत श्रीनारायण गुरु का उदय (जन्मः 20 अगस्त 1856) एवं उनके द्वारा किए गए नवोत्थानपरक पहलों पर अनेक सुधीजनों ने अपनी अपनी मेधा एवं संज्ञान के अनुसार कलम चलायी है। आभार है उन महामनीषियों का जिन्होंने गुरु का अनुसरण किया है। अब उन तमाम गुरुभक्त साहित्यवेत्ताओं की गरिमामयी पंक्ति में एक और नाम जुड़ गया है- प्रोफ. डी. तंकप्पन नायर। अनुमानतः अपने सत्तर वर्षीय साहित्य लेखन - संपादन-अध्यापन अनुभवों को एकत्र कर बानबे वर्षीय इस महामेधावी प्रोफेसर- नायर जी ने अपनी प्रौढावस्था में एक श्रेष्ठ महाकाव्य का सृजन जो किया है उससे यह ज्ञात होता है कि आप अतीत को संस्कार देने और अपने अनुभव-पठित सत्यों के आधार पर भविष्य के लिए कुछ उपयोगी बातें छोड़ देना चाहते है।

भिन्न तुकांत रचना पद्धति को अपनाकर संस्कृतनिष्ठ खडीबोली में सृजित इस महाकाव्य का स्वरूप वृहद् एवं सर्गबद्ध होने के कारण महाकाव्य पद अलंकृत करने का महती संयोग और सौभाग्य उक्त रचना को प्राप्त हुआ है। एतदर्थ वह समीचीन भी हैं। लय- तालयुक्त सहज भाषा में इसकी जो रचना हुई है वह अनुकरणीय एवं अभिनन्दन के योग्य भी है। भिन्न तुकांत रचना पहले अर्थात् बीसवीं शती के पूर्वार्ध में हिंदी साहित्य में नई वस्तु थी। मगर आजकल इसकी बाढ- सी आ गई है। उत्तराधुनिक कविता का ध्यान क्लिष्ट और कठिन पदबंधों पर सजा जाता है। मगर प्रो.नायरजी ने अपनी कविता में क्लिष्टता को मात देकर 'सरलता' तत्त्व को स्थान देकर रचना को अत्यंत पठनीय बना दिया है। वैसे स्वयं को 'परंपरावादी' सिद्ध किया है।

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य का कथानक देश के यशस्वी महान संतों में अन्यतम श्रीनारायणगुरु के व्यक्तिकृति जीवन पर आधृत है। सर्वविदित है कि विपुलमति श्रीनारायणगुरु जी ने ब्रह्मचर्य का पालन करना

अपने जीवन का परम लक्ष्य माना था और इस प्रकार आपने सामाजिक श्रद्धा का विपुलांश खोने से स्वयं को मुक्त रखा। पर ध्यातव्य है कि आपके विख्यात् शिष्य कुमारन आशान ने विवाह कर बतौर कवि या महाकवि की संज्ञा से ही प्रतिष्ठित रहे। इस महाकाव्य का नायक श्री नारायण गुरुदेव हैं जिनके जीवन का वर्णन करना मुमकिन नहीं हैं, लेकिन प्रोफेसर नायर जी ने अपनी कलम से उद्‌भूत स्याही प्रवाह में इस महाकाव्य को रूपायित किया है। पचास सर्गो में निबद्ध इस काव्य का आरंभ केरल के महिमागान से हुआ है-

"संपन्न है केरल अनेक पुण्य नदियों, गिरियों, पहाडियों
और झीलों से जो करते हैं प्रदान न्यारी प्रकृति छटायें।"

गुरु के जन्म को लेकर नायरजी की पंक्तियाँ देखिए-

तिरुवनंतपुरम से बारह किलोमीटर दूर स्थित है चेंपष़ंती गाँव
जहाँ वलयवारं नामक घर में हुआ श्रीनारायण गुरु का
जन्म अठारह सौ छप्पन में सितंबर चौदह को और जन्म
देने से एक महापुरूष को वह घर हुआ ऐतिहासिक महत्व का।"

प्रत्येक सर्ग प्रत्येक प्रसंग पर केन्द्रित है। ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि साहित्य पर प्रदृष्ट सभी प्रकार की बातों का नज़ारा इसमें दिखाया गया है। जितने गुरु धार्मिक थे उतने ही आप साहित्यिक थे। पैंतालीस से अधिक रचनाएँ आपने वाङ्मय को प्रदान की है। आयुर्वेदादि समस्त विद्याओं के मेधावी छात्र के रूप में नारायणगुरु का अस्तित्व आज भी ज्यों का त्यों बरकरार है। नायरजी की पंक्तियाँ देखिए-

"नाणु हो गये सिद्धहस्त आयुर्वेद में कम उम्र में ही
हुआ ऐसा अपने मामा लोगों के उत्तम शिक्षण से ही
नाणु थे बडे - मेधावी छात्र और लोगों को हुआ परिचय
नाणु के अद्‌भुत विशिष्ट व्यक्तित्व का उन्हीं दिनों में ही।"

यहाँ 'नाणु' की विवक्षा श्रीनारायण गुरु से है जिन्हें लोग प्यार से 'नाणु' की संज्ञा से पुकारते थे। उनकी शिक्षा वारणापल्लि नामक गुरुकुल में हुआ था। कविवर की पंक्तियाँ हैं-

"वाराणप्पल्लि घर में निवास कर शिक्षा पाने से श्री नारायण
गुरु सदृश ऐतिहासिक महत्व के एक महापुरूष वह घर भी
हो गया इतिहास का भाग और उस घर के निकट ही स्थित
रामन पिल्लै आशान की पाठशाला से वे पाते थे शिक्षा।"

आपके अनेक सतीर्थ परवर्तीकाल में विद्या संपन्न हुए। बचपन में ही आपमें आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रारोह हो गया। आत्मचिंतन एवं अध्ययन-अध्यवसाय में नारायण की अपूर्व एवं अटूट निष्ठा थी। बचपन से ही संस्कारी परिवेश में पलने के कारण उनमें सद्‌व्यवहार एवं अच्छे संस्कार सहसा समाहित हो गए थे। परमसत्य की खोज में अवधूत बन निकले नारायण को उससे पहले 'विवाह' की संकल्पना से जूझना पड़ा। पर बाद में बातें टल गईं। प्रो.नायर जी की पंक्तियाँ देखिए-

"पिताजी की रिश्तेदार लड़की से आया प्रस्ताव विवाह का
एक मध्यस्थ द्वारा तो कुछ विशेष न बोले नारायण किंतु

रिश्तेदारों की योजना के अनुसार उस लडकी को नारायण की
बहन ने देकर वस्त्र व आभूषण निभाया शादी का रस्म।"

लेकिन उनका अवधूत होना नियति नियोग ही था। उस ठोस निर्णय लेने के पश्चात् स्वतः प्रज्वलित अध्यात्मिक ज्ञान स्थिर रखने की भव्य स्थिति उनमें उत्पन्न हो गई। वेद, वेदान्त, उपनिषद, ब्राह्मण, तत्त्वज्ञान आदि विषयों पर आपका ज्ञान व्योम-स्पर्शी हो गया। आर्थात् लोगों को सही राह दिखाने में आप सक्षम हो गए।

समाज में फैली अस्पृश्यता के कारण नारायणगुरु का मन अस्वस्थ व चंचल होने लगा था। अद्वैतवादी होने के साथ ही समाज में व्याप्त द्वेष की स्थिति पर आपके चित्त में उथल-पुथल मचने लगी थी। कविवर नायरजी लिखते हैं-

"जब नज़र डाली उन्होंने समाज में तो हुआ मालूम
कि तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्पृश्यता जैसे
अनाचार, जाति-भेद आदि हैं निरर्थक और इसलिए
उन्होंने अपनी आवाज़ बुलंद की उन्हें दूर करने की।"

एक सजग और जीवंत साहित्यकार की रचना में उसका वर्तमान ही प्रतिबिंबित होता और वह स्वरूप ग्रहण करता है। अतीत को अर्थवान बनाते हुए भी नवीनता का भावोद्रेक रचना में सहज ही बनता है। ग्राम्षी की अभिकल्पना 'सांस्कृतिक आधिपत्य' का सीधा नज़ारा गुरु के कर्म-धर्म-कर्तव्य में मिलता है। अवधूत काल में ही 'स्व' से बढकर 'पर' पर गुरु जी का ध्यान आकर्षित हुआ या। उनके अनेक प्रसिद्ध नारे जो समाजोन्नति हेतु सृजित थे, आज भी लोगों को कंठस्थ हैं।

तैक्काट अय्याव स्वामीजी, जो तत्कालीन राजदरबार में अधीक्षक थे, की छत्रछाया में रहकर, गुरुत्व की वरीयता को जानकर स्वयं 'आचार्य' होने के कगार पर एक परिपक्व रूप से आप प्रतिष्ठित हुए। गुरु के 'गुरु भाई' के रूप में चट्टंबी स्वामी के प्रभाव को हम अनदेखा नहीं कर सकते। दोनों - चंट्टंबी स्वामी और - नारायण गुरु की मैत्री उस्ताद-शागिर्द से उपरि अग्रज-अनुज जैसी थी। तपश्चर्या हेतु मरूत्वामला की ओर प्रस्थान कर दोनों ने अपना तपोनाम षण्मुखदास (चट्टंबी स्वामी) और षण्मुखभक्त (गुरु) रखा था। चट्टंबी स्वामी के प्रसंग में कविवर प्रो.नायरजी की पंक्तियाँ देखिए-

"चट्टंबी स्वामी हुए विख्यात् विद्याधिराज चट्टंबीस्वामी
के नाम से और श्रीनारायणगुरु और चट्टंबी स्वामी की मैत्री
सहायक हुई समाज को आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने में और चट्टंबी
स्वामी थे गुरुदेव को भ्राता और मार्गदर्शक के रूप में।"

तैक्काड अय्याव बडे योगी थे। मरुत्वामला प्रसंग अत्यंत मार्मिक है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि कालांतर में शायद गुरु ही सर्वमान्य एवं सर्वादरणीय हो गए, शेष जितने भी महामनीषी आपके संग थे, उनके संदर्भ में विधेय-विमर्ष से हो गए। नागर कोविल में माँ योगिनी के दर्शन अत्यंत रोचक रहा। मूक्कोत्त कुमारन, कुमारन आशान, डॉ.पल्पु प्रभृति कई शिष्य गुरु की परंपरा को आगे बढ़ाने में बहुत ही सक्षम थे। 'अरुविप्पुरम' की शिवलिंग प्रतिष्ठा ख्यातिप्राप्त घटना है। तत्कालीन केरल में जात-पाँत का कुप्रचलन जोरों पर था। इसपर

गुरु अत्यंत क्रुद्ध एवं परेशान थे। गुरुदेव के मन में उच्चता और नीचता का भाव नहीं था। तत्कालीन केरलीय दलित समाज के लोगों की स्थिति पर कविवर नायरजी की पंक्तियाँ हैं -

"उन दिनों प्रवेश निषिद्ध था मंदिरों में पिछड़े दलित वर्णों को
लेकिन किसी पात्र में दान दक्षिणा रखकर खड़े हो सकते थे
द्वार पर और मंदिर का प्रसाद उन्हें वहाँ फेंक दिया जाता था
उतनी कठोर थी अस्पृश्यता की भावना जिससे गुरु देव हुए खिन्न।"

आगे शिवलिंग स्थापना पर कविवर लिखते है -

"अछूत जाति के एक अब्राह्मण द्वारा करना शिवलिंग की
प्रतिष्ठा एक क्रांतिकारी घटना थी सांस्कृतिक इतिहास में"

शुद्धि पंचक पर आपकी निष्ठा थी। देहशुद्धि, वाक्शुद्धि, मनःशुद्धि, इंद्रियशुद्धि व गृहशुद्धि ये पाँचों लोगों को अनिवार्य हैं। ब्रह्मचर्य, आध्यात्मिक जीवन आदि पर धर्मोपदेश देते वक्त भी दुराचारों, बुराइयों, पाखंडों, विडंबनाओं जैसी सामाजिक उपाधियों का खुलकर विरोध करते थे। गाढे दिन की उन बातों को समाज से दूर करके उसे शुद्ध एवं पवित्र करना उनका लक्ष्य था। आजन्म संन्यासी एवं क्रांतिकारी रहने के कारण उनका सान्निध्य लोगों को संजीवन-बूटी सा प्रतीत होने लगा था। अय्यंकाली प्रसंग, कोलंबो प्रसंग आदि अनेक उत्कृष्ट ऐतिहासिक तथ्यों को जानने पर निश्चय ही प्रबुद्ध पाठक स्वयं को ज्ञानवान प्रतीत करेंगे। भारत निर्माण के प्रति उनकी मंशा सदा ही मनीषियों-विद्वानों को प्रेरणादायी रही है। लोगों को प्रशिक्षित कर उन्हें तरह तरह के - जीवनोपयोगी और आजीविकोपार्जन हेतु विधाएँ सिखाने में आपने पहल किया। प्रो. नायरजी लिखते है-

"उन्होंने किया प्रबंध आश्रमों में ही रस्सी बनाना सिखाने का
कपड़े बुनाने को प्रशिक्षण देने का और उनका पक्का विश्वास
था कि कुटीर उद्योगों में प्रशिक्षण देने से देश की होगी
आर्थिक प्रगति और साथ ही दूर होगी बेकारी की समस्या भी।"

ऐसे अनेक रोचक एवं प्रेरक प्रसंगों से सजे-धजे इस ग्रंथ की प्रौढता का वर्णन करना असाध्य एवं कष्टसाध्य कार्य है। गुरूके भव्य कर्मो से लेकर उनकी समाधि तक, मुख्य बिंदुओं को छोड़े बिना, का वर्णन इस भव्य महाकाव्य को श्रेष्ठ से सर्वश्रेष्ठ बना देता है।

प्रोफ. डी. तंकपन नायरजी ने अपनी इस वयोगत अवस्था में भी नैतिक मूल्य की पुनःस्थापना हेतु ऐसा उत्तम उद्यम किया है वह अनुकरणीय एवं चिरस्मरणीय रहेगा।

अभी तक राष्ट्रभर से तमाम पुरस्कारों-सम्मानों से विभूषित इस महामना साहित्यकार-साहित्यसेवी के जीवन को प्रौढ क्षण निश्चय ही यह महाग्रंथ प्रदान करेगा। जहाँ जहाँ आपने अपनी समग्र उर्जा मूल्यत्रयों-कल्पनाशक्ति, रचनात्मकता और संकेत - पर खर्च की वहाँ वहाँ शलाका पुरुष बनकर उभरने में आपका निष्कलंक-निष्काम जीवन ही सहायक रहा होगा। प्रोफेसर डी. तंकप्पन नायर जी ने प्रोफेसर डॉ. जी

गोपिनाथन, कोट्टुक्कोयिक्कल वेलायुधन जैसे अनेक रचनापटुओं की ख्यातिप्राप्त रचनाओं की कोणाकोणी सांगत्यों -प्रसंगों का निष्ठापूर्वक अध्ययन कर अपने ग्रंथ की तैयारी की है। आपका जीवन बड़े ही धन्य है और उत्तरोत्तर आपके कलम से ऐसी उत्कृष्ट रचनाओं का प्रकाशन हो यही इस विनम्र शिष्य की कामना है। आप जैसे आकाशधर्मा गुरु चिरायु रहें और ऐसे ही जीवन अर्थात् श्रीनारायण गुरु के सदृश दार्शनिक सदा बने रहें। कविवर की पंक्तियाँ हैं-

"भारत में आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत श्रीनारायण गुरु
व्यक्त करते थे अपने विचार संवादों व रचनाओं में
जिनमें अभिव्यक्त हुई है उनकी विचारधारा सामाजिक
सांस्कृतिक, लौकिक एवं आध्यात्मिक विषयों पर।"

आपकी रचना परंपरागत काव्य विशेषताओं से समृद्ध है। भरत मुनि ने पठनीयता की दृष्टि को यों व्यक्त किया है। भरतमुनि की पंक्तियाँ है -

"मृदुललित पदाढ्य गूढशब्दार्थ हीनं
जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृतययोज्यम्
बहुकृत रसमार्ग संधि संधानुयुक्तं
स भवति शुभकाव्यं नाटकं प्रेमकाणानाम्।"

लेखक और कवि के रूप में श्रीनारायण गुरु ने करीब 45 ग्रंथों का प्रणयन किया था। संस्कृत, तमिल और मलयालम भाषा में सर्जित रचनाएँ भारतीय वाङ्मय का धरोहर है। उनमें दर्शनमाला का महत्व सबसे ज़्यादा है। एस.एन.डी.पी. (श्रीनारायण धर्म परिपालन योगम) के सर्वेसर्वा गुरुजी ही थे। ऐसे देश के दूरदर्शी महान् ऋषियों में श्रीनारायण गुरु अन्यतम हैं। सन् 1922ई. में शिवगिरि में श्रीनारायण गुरु के दर्शन के अनन्तर कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा था - "मैं विश्व के विभिन्न भागों का भ्रमण करता रहा हूँ। इन यात्राओं के दौरान बहुत से संतों और महर्षियों से मिलने का मेरा सौभाग्य रहा है। परन्तु मैं यह स्पष्टतः स्वीकार करता हूँ कि मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो आध्यात्मिक दृष्टि से केरल के श्रीनारायण गुरु से महत्तर या आध्यात्मिक सिद्धियों में उनके समकक्ष भी हो। दैवी महिमा से स्वयं आलोकित उस मुखारविन्द और सुदूर क्षितिज के एक स्थान पर दृष्टि केन्द्रित किए उन यौगिक नेत्रों को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता।"

ऐसे अनेकानेक रोचक प्रसंगों से सजे इस महाकाव्य का भव्य स्वागत हिंदी साहित्य क्षेत्र में अवश्य होगा। प्रो.डी.तंकप्पन नायरजी ने जो स्तुत्य कार्य किया है वह हमेशा साहित्य प्रेमियों के मन में अनाविल चेतना सदा बहाता रहेगा। मैं अपने दोनों पुरुषों का नमन करता हूँ। मैं अपने प्रत्यक्ष गुरु प्रो.डी.तंकप्पन नायरजी की काव्यकला की दाद देते हुए मैं आपके प्रदेयों का स्मरण करता हूँ। शायद मेरी निगाह में आप दोनों गुरुओं को जोडनेवाली कड़ी अद्वैत दर्शन का सारांश है –

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मोव नापरः।

संपादक, केरल ज्योति

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

पहला सर्ग

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

गुरुदेव का परिवार था आयुर्वेद वैद्यों का और
उनके मामा थे रामन वैद्य और कृष्णन वैद्य जो थे
प्रसिद्धि-प्राप्त स्थानीय सम्मान्य वैद्य और उनका परिवार
खेती भी कई तरह की करते आया परंपरा से।

उन दिनों श्रावण के महीने में ओणम का त्योहार होता
था कई दिनों तक और ओणम के तीसरे दिन हुआ
जन्म श्रीनारायण गुरु का और घर से निकली
मंगलसूचक स्त्रियों की उच्च स्वर में उलूहल ध्वनि।

रहते थे वयलवारं के निकट मूत्तपिल्ला नामक विद्वान
जिनको था अगाध पांडित्य ज्योतिष में जिन्होंने जान लिया
एक लडके का जन्म और गणना करके की भविष्यवाणी
कि यह लडका बनेगा विश्ववंदनीय महान युगपुरुष।

अगले दिन गये सबेरे माटन आशान मूत्तपिल्ला के यहाँ
सुनाने खुशखबरी पुत्रजन्म की तो उन्होंने दोहरायी
भविष्यवाणी और कहा कि यह होनहार बालक होगा महान
और मिटाकर दुख दीन दुखियों का करेगा उनका उद्धार।

चेंपषंती ग्रामवासियों को थी यह बात अनोखी और
आश्चर्यजनक कि जन्म के समय शिशु रोया नहीं
बड़ी चिंता हुई घर के लोगों को और घबराहट भी
कथा न रोते शिशु की फैल गयी गाँव भर बड़ी तेज़ी से।

शिशु का नामकरण हुआ नारायण किंतु वात्सल्य पूर्वक
माता-पिताओं ने पुकारा नाणु और जब हुआ छठे महीने का
हुआ शिशु का अन्नप्राश्न संस्कार और उस मंगल कर्म में
हुए उपस्थित सब नातेदार एवं असंख्य ग्रामवासी भी।

शिशु के पालन में दत्तचित्त थी कुट्टी अम्मा सदा
और बढ़ने लगा शिशु सब का दुलार पाते हुए
थे बचपन में नाणु तेजस्वी व स्नेहिल और बन गए
सब का दुलारा अपने विशिष्ट स्वभाव व सद्गुणों से।

पसंद नहीं था नाणु को झूठ बोलना छुटपन से ही
और जाया करते थे मंदिरों में अपनी माता समेत

बढ़ने लगी जब पुत्र की ग्रहणशक्ति तो नाणु को
उत्सुक हो सुनाती थी उत्कृष्ट कथायें पुराणों की।
कालांतर में कोच्चु कोच्चम्मा और देवी नाम से हुई
तीन सहोदरियाँ नाणु की और बाल्य में उनसे खेलते
समय में भी नाणु थे सख्त झूठ बोलने के मामले में और यों
दिया परिचय नाणु ने उस समय भी अपनी सत्यता का।
अपने मित्रों सहित जा रहे थे नाणु पाठशाला एक बार
और मार्ग में दीखे जीर्ण वस्त्र में एक जटाधारी भिक्षु
भिक्षु और उनके वेष ने जगायी कुतूहलता मित्रों में और
फ़ेंकने लगे वे पत्थर भिक्षु पर करते हुए ही ही।
असहनीय था नाणु को मित्रों का निंदनीय दुर्व्यवहार
सोचा उनका विरोध करना होगा निष्फल ही इस कारण
अत्यन्त व्याकुल हो रो पडे नाणु अपनी निस्सहायता पर
इतने में पड़ी भिक्षु की नज़र पीछे आते बालक पर।
पूछा भिक्षु ने बालक से कि रोता क्यों तू तब बोला बालक
कि एक भले मनुष्य पर हुए उपद्रव को रोक न पाने की
अपनी विवशता पर रो पड़ा मैं और बालक के जवाब से प्रसन्न
भिक्षु उसे उसके घर ले गये अपने कंधे पर उठाके।
भिक्षु ने बताया सारा वृत्तान्त घरवालों को तो माता-
पिता ने किया सत्कार भिक्षु का और बालक की
उच्चता से प्रभावित भिक्षु ने दिया आशीर्वाद कि यह बालक
होगा सब का हितैषी और लोकमंगलकारी महात्मा।
बाल्य में ही थी श्रीनारायणगुरु में असाधारण अलौकिक
क्षमतायें जिनसे अनुभूत हुए गाँव के सब निवासी भी
एक बार हुआ विवश सारा गाँव वर्षा न मिलने से और
उसके लिए की लोगों ने समूह प्रार्थना मंगलकामना से।
सब लोग हुए तैयार पोंगल निवेद्य करने को जिनमें
थे नाणु भी अपनी माता समेत निवेद्य करने को
कहा नाणु ने माँ से करूँ मैं निवेद्य तभी होगी वर्षा
तू ही कर दे कहा माँ ने और मिली अनुमति नाणु को।
किया नाणु ने पोंगल का निवेद्य और हुआ आश्चर्य
अल्प समय पश्चात घमासान वर्षा हुई आनन्ददायी
हुए प्रसन्न ग्रामवासी सब के सब और कुतूहल हुए
नाणु के मित्र और कहा उन्होंने नाणु से बड़ी आकाँक्षा से।
सामने खड़ा यह नारियल का पेड़ देता है हर मौसम में
खोटे फल और तू बना दे इसके फल खरे सुनकर
मित्रों की वाणी नाणु ने पेड़ को किया आश्लेष भक्तिपूर्वक
और माँगे खरे फल और तदनंतर मिले खरे फल निरन्तर। (क्रमशः)

कोणार्क नाटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. धन्या.बी

शोध सार : कलाकारों और मज़दूरों पर शोषण युगों से चलता रहता है । अथक परिश्रम करने पर भी कलाकार और मज़दूरों को अपने परिश्रम के वेतन और सम्मान न मिलते हैं। यह भी नहीं ज़मीन्दार और सामंतवादी समाज से उन्हें घृणा ही मिलती रहती है। कभी - कभी धमकियाँ देते हैं कि - 'पूरा काम समय पर न करने से वेतन न देंगे या हाथ पांव तोडेंगे या मारेंगे। इस प्रकार अमीरों से होनेवाले सारे अन्याय सह कर जीने वाला एक मानवीय समाज प्रतिरोध की अग्नि में क्रांतिकारी बनकर सामंतवादी समाज पर आक्रोश उठाता है और अपने द्वारा बनाये हुए सारे परिश्रम को तोडने में भी वे नही हिचकते हैं।

बीज शब्द : चुंबक , त्रिपटधर , मूर्ति , धुरी टूट जाना, बहाना करना , मज़दूर , गर्भ-गृह आदि ।

मूल आलेख : रंगचेता नाटककार, गंभीर नाट्यान्वेषक, चिंतक एवं कलाकारों के प्रेरक, संरक्षक, जगदीशचंद्र माथुर का ख्याति प्राप्त नाटक है 'कोणार्क'। आपका लेखन, परिमाण की अपेक्षा गुणवत्ता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। माथुर जी स्वयं लिखते हैं कि "मन में भरी हुई अनजानी गाँठें व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति शैली निर्धारित करती है।"[1] "कोणार्क नाटक के तीन अंक हैं। इसकी कथावस्तु कोणार्क में स्थित सूर्यक्षेत्र के निर्माण से संबंधित है। 'इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है इसका काव्यत्व, जो प्रसाद की तरह नाटकों पर हावी न होकर कथावस्तु , नाट्य स्थितियों और रचनातंत्र के भीतर से निकलता है"[2] बारहवीं शताब्दी में उत्कल प्रदेश के राजा कलाप्रेमी नरसिंह देव थे। उन्होंने अपने प्रधान शिल्पी विशु को कोणार्क का अपूर्व मंदिर बनाने का आदेश दिया । महा शिल्पि विशु अपने बारह सौ सहयोगियों के साथ मंदिर के निर्माण कार्य में तन -मन से लग गए। इसी बीच नरसिंह देव को वंग प्रदेश जाना पड़ा। उन्होंने शासन का भार महामात्य चालुक्य को सौंप दिया। कोणार्क मंदिर का निर्माण बारह वर्षों होने पर भी पूरा नहीं हुआ। विशु को भी निश्चय नहीं था कि यह कब पूरा हो जाएगा। मंदिर की दीवारों पर अनेक मूर्तियाँ उकेरी जा चुकी थीं। विशु के सामने सबसे बडी समस्या यह थी कि चारों ओर से चुंबकों के आकर्षण से निराधार स्थित मूर्ति को बाँधे रखने के लिए जो त्रिपटधर स्थापित करना था, वह स्थापित नहीं हो पा रहा था। सब शिल्पिगण निराश हो गए। इस समय मुख्य पाषाण कोर्तक राजीव विशु से बताते हें कि सोलह वर्ष का एक युवा शिल्पी धर्मपद विशु से मिलना चाहता है। धर्मपद, विशु से मिलता है और वादा करता है कि त्रिपटधर वह स्थापित कर देगा। इसी बीच महामात्य चालुक्य आकर धमकी देता है कि अगर त्रिपटधर सात दिन के अंदर स्थापित न हुआ तो समस्त शिल्पियों का हाथ काट दिये जायेंगे। लेकिन धर्मपद अपने कला कौशल से त्रिपटधर स्थापित करने में सफल हो जाता है । जब राजा अपने प्रिय मंदिर देखने को लौट आये हैं तब बीच में रथ की धुरी टूट जाने का बहाना बनाकर चालुक्य रुक जाता है। मंदिर में आने पर विशु राजा को यह बताता है कि आज से महाशिल्पि धर्मपद है। राजा से बातचीत के दौरान धर्मपद महामात्य चालुक्य द्वारा शिल्पियों और मजदूरों पर किए जा रहे अत्याचारों का वर्णन कर देता है। वह बताता है कि गाँवों में शिल्पियों और मजदूरों की ज़मीन को छीनकर उसे सैनिकों में बाँट दिया गया है और उन्हें वेतन भी नहीं दिया जा रहा है। राजा को यह सब सुनकर विश्वास नहीं होता । तभी राजा को यह सूचना मिलती है कि चालुक्य ने अपनी सेना द्वारा

मंदिर को तीनों ओर से घेर लिया है। दूत द्वारा राजा को आत्मसमर्पण करने के लिए कहा जाता है। महाराज की सहायता करने के लिए धर्मपद आगे आता है। वह सब शिल्पिगण और मजदूरों को युद्ध के लिए प्रेरित करता है। महाराज धर्मपद को कोणार्क का दुर्गपति नियुक्तकरते है। धर्मपद सभी लोगों को अलग- अलग कार्य सौंप देता है। सब मिलकर यह निश्चय करते हैं कि किसी भी प्रकार से दिन भर चालूक्य को मंदिर में प्रवेश करने से रोक रखा जाय। रात में लडाई बंद होते ही महाराज समुद्र मार्ग से जगन्नाथ पुरी चले जाएंगे। दूसरे दिन अपनी सेना के साथ लेकर पीछे से चालुक्य पर आक्रमण कर देंगे। युद्ध में अन्य लोगों के साथ धर्मपद भी बुरी तरह घायल होते हैं और युद्ध भूमि पर उसकी वीर मृत्यु हो जाती है। उसके गले में जो हार था उसे देख कर विशु को पता चलता है कि धर्मपद उसका पुत्र है। प्रतिरोध की अग्नि में जलता हुआ विशु हथौड़े से मंदिर के चुंबक को तोड़कर त्रिपटधर को नीचे गिराया और टुकड़ा - टुकड़ा करके सारे मंदिर का सर्वनाश करते हैं। मंदिर टूटकर शत्रुओं के ऊपर पड़ते हैं और विशु भी गिर पड़ते हैं। इस प्रकार बारह वर्ष तक की अपनी अथक परिश्रम और कला के ज्वलंत प्रतीक मंदिर को गिराकर विशु अत्याचारी चालूक से बदला लेता है।

प्रस्तुत नाटक में माथुरजी ने मुख्यतः देशप्रेम, कलाकार का दायित्व, प्रतिशोध आदि को प्रधानता दी है। नाटक में महाशिल्पि विशु के मानसिक संघर्ष को उभारने में माथुरजी को पूर्ण सफलता मिली है -"भव्य मंदिरों को बनानेवाले यह हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोंपड़ी भी बना न सके।"[4] यह भी नहीं कोणार्क नाटक में युद्ध का वर्णन किया गया है। यहाँ शासक वर्ग अपना स्वार्थ सिद्धि के लिए लड़ाई करते हैं। अपने देश की रक्षा के लिए शिल्पिगण भी इसके विरुद्ध लड़ाई में भाग लेते हैं। अंत में राष्ट्र के कूटनीतिज्ञों के विरुद्ध लड़कर सच्चे देश प्रेमी बनकर धर्मपद मृत्यु का वरण करता है और अपने पुत्र की हत्या के प्रतिशोध में मंदिर तोड़कर षड़यंत्रकारियों को मारकर विशु भी स्वयं मृत्यु का अलिंगन करता है।

उद्देश्य : 'कोणार्क ' एक दुखांत नाटक है , जिसमें नाटककार ने प्रायः सभी मुख्य पात्रों के निधन के साथ ही अपूर्व कलाकृति सूर्यमंदिर को भी ध्वस्त होते दर्शाया है। शिल्पियों के युग-युग से मौन पौरुष को वाणी देना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए उन्होंने नाटक को इस रीति से नियोजित किया है कि वह शिल्पि के प्रतिरोध का नाटक साबित हो। सामंतवादी समाज और अमीरों से निरंतर शोषित, इस प्रकार के समाज को अब भी हम देश के कोने कोने में देख सकते हैं।अपने ऊपर होनवाले सारे अन्याय,पाखंड, आतिक्रमण आदि निस्सहाय होकर उनको सहना पड़ता है। अपने सारे क्रोध मन के भीतर दबाकर रहने वाले ये समाज एक दिन जरूर फूटकर क्रांति का आग फैलायेंगे। समाज का सर्वनाश करेगे। अपने ऊपर होनेवाले घोर अन्याय पर बदला लेने के लिए शोषित वर्गों को जागरित करना भी नाटककार का उद्देश्य है। वर्तमान काल में चारों ओर इस प्रकार की घटनाएँ हो रही हैं। इसलिए प्रस्तुत नाटक का बहुत अधिक समकालिक महत्व भी है।

समीक्षा : कोणार्क मंदिर संबंधित किंवदन्ती पर आधारिक, एक कलाकार की प्रतिशोध कथा का जीवन्त नाटक कोणार्क। सामंतवाद के विरुद्ध कलाकार का सशक्त , सफल विद्रोह दिखाने के कारण एक सफल समसामयिक नाटक है। निस्संदेह इसे प्रतिरोध एवं संघर्ष का अमर रंगमंचीय काव्य कह सकते हैं। यह भी नहीं आपकी साहित्य सृष्टि व्यापक तथा सारगर्भित है। माथुरजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार रहे हैं। नाटककार के रूप में आपने जादू दिखाया है। आपने प्रस्तुत नाटक कोणार्क और अन्य अनेक नाटकों में ऐतिहासिक,पौराणिक विषयों को नवीन भावबोध के साथ प्रस्तुत किया और नए नाटकों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। नाटक के तत्त्वों पर नजर डालें तो पता चलता है कि 'कोणार्क

' नाटक में आपने कमाल का कार्य किया हैं जो अवर्णनीय है। माथुरजी के 'कोणार्क' इतिहास और कल्पना का मनोरम संयोग है। कुशल नाटककार इतिहास के कोने में पडे पत्थरों को भी परख लेते हैं और उन रत्नों की चमक दुनिया के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। 'कोणार्क' में नाटककार ने ध्वस्त कोणार्क के सूर्य मंदिर के ऐतिहासिक प्रसंग को युगीन बनाकर नाटकीय कथानक के माध्यम से उजागर करना चाहा है। इसमें ऐतिहासिकता पर उतनी दृष्टि नहीं रखी गयी है जितनी मानवीय संवेदनाओं एवं उसकी प्रतिक्रियाओं पर। वही कारण है कि नाटक का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी मानवीय भावना से ओतप्रोत है। विशु, धर्मपद और कोणार्क मंदिर के ध्वंस से संबंध की कथा मुख्य कथा है। किंतु विशु की पूर्व प्रेमिका और धर्मपद की माँ सारिका को स्मृत्यात्मक कथा में पताका के लक्षण अवश्य देखे जा सकते हैं। इन सारी कथाओं का नियोजन अत्यंत सुसंबद्ध ढंग से किया गया है। 'कोणार्क' नाटक में मौलिकता और नयेपन के गुण सहज रूप से मिल जाते हैं। कोणार्क मंदिर के विध्वंस की किंवदन्ती को लेकर कुछ साहित्य सृष्टियाँ पहले भी हुई हैं। किंतु कोणार्क का कथासूत्र इन सबसे अलग हैं। स्वयं माथुरजी लिखते हैं कि 'मैंने उसका रूप इस नाटक में इतना बदल दिया है कि शायद वे उसे पहचान भी न पायें और रुष्ट भी हो कि मैंने एक ललित और करुण रस से भरी कहानी को इस रौद्र रूप में प्रदर्शित किया है। मुझे उस किंवदन्ती के करुण लालित्य ने आकृष्ट अवश्य किया किंतु जिस विशाल और पुष्ट कल्पना का कोणार्क मंदिर परिचायक है और जिस संघर्ष प्रधान युग में उसका निर्माण हुआ- उसके मुकाबले में मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग युग से मौन पौरुष जो सौंदर्य सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है, कोणार्क के खंडन के क्षण फूट निकला हो। चिरंतन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरुष को मैंने वाणी देने की धृष्टता की है।"[5] 'इस तरह इतिहास की पीठिका पर व्यक्ति और समाज का अनेक स्तरीय मूल्यांकन करने के कारण 'कोणार्क ' स्वातंत्र्योत्तर काल का सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त नाटक है।"[6] कोणार्क एक दुःखान्त नाटक है जिसमें नाटकार ने प्रायः सभी मुख्य पात्रों के निधन के साथ ही अपूर्व कलाकृति सूर्य मंदिर को भी ध्वस्त होते दर्शाया है। शिल्पियों के युग युग से मौन पौरुष को वाणी देना उनका मुख्य उददेश्य था। इसलिए उन्होंने नाटक को इस रीति से नियोजित किया है कि वह शिल्पियों के प्रतिशोध का नाटक साबित हो। इसमें काव्यत्व के गुण भी भरपूर मात्रा में है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है इसका काव्यत्व।

आधार ग्रंथ

कोणार्क - जगदीशचंद्र माथुर - राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड - नई दिल्ली - 1951

सहायक ग्रंथ सूची

1. 'कोणार्क ' परिचय (मूल संस्करण - जगदीश चंद्र माथुर - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - 1951 -पृ. 12
2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में - डॉ. रीता कुमार-भूमिका प्रकाशन-1991-पृ.24 भारती प्रकाशन-इलाहाबाद 1986, 2 जिन्होंने जीना सीखा- जगदीश चंद्र माथुर - सस्ता साहित्य मंडल - नई दिल्ली- 1968
3. नाटककार जगदीश चंद्र माथुर - मीनाक्षी काला - शारदा प्रकाशन-नई दिल्ली - 1983
4. भारतीय नाटक एवं रंगमंच - सं. जगदीश चतुर्वेदी , केन्द्रीय हिंदी निर्देशालय , नई दिल्ली 1990
5. स्वातंर्त्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में - डॉ. रीता कुमार - भूमिका प्रकाशन - 1991

संदर्भग्रंथ सूची

1. कोणार्क, परिचय (मूल संस्करण)-जगदीश चंद्र माथुर, पृ.13
2. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास,डॉ.भगीरथ मिश्र, पृ. 420
3. कोणार्क:परिचय मूल संस्करण-डॉ.जगदीश चंद्र माथुर, पृ.34
4. नाटककार जगदीश चंद्र माथुर , गोविंद चातक, पृ. 129
5. कोणार्क , परिचय (मूल संस्करण)-डॉ.जगदीश चंद्र माथुर , पृ.12
6. आधुनिक हिंदी नाटक - सुरेशचंद्र शुक्ल, पृ. 88

सहायक प्रोफेसर
सरकारी कॉलेज आट्टिंगल

वसीयत के वृद्ध-पक्ष

डॉ. षाजी.एन.

समकालीन साहित्य में उत्पीडित समुदायों की अभिव्यक्ति अत्यंत यथार्थ से होती रहती है। वर्तमान समय में ऐसे अनेक समुदाय है जो अपनी दमित व्यथा तथा वेदना खुलकर दिखाने में सफल बनते हैं। इसी कारण से समकालीन साहित्यकार दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, किन्नर साहित्य, वृद्ध साहित्य जैसे हाशिये कृत समुदायों पर अधिक जोर देते है। भारत में वृद्धों की गणना आज हाशिये कृत समुदायों के अंतर्गत की जा रही है। "वृद्ध शब्द का अर्थ है-पका हुआ या परिपक्व। वरिष्ठ नागरिक देश का अमूल्य धन है।"[1] लेकिन समाज एवं परिवार से उपेक्षित वृद्धों की हालत हाशिये कृत वर्ग से भी शोचनीय है। "बूढे लोगों में अक्सर पुनर्योजी क्षमता सीमित होती है और वे युवा वयस्कों की तुलना में बीमारी और चोट के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।"[2] मानवीय संवेदना एवं परंपरागत मूल्यों को स्थापित करने में समकालीन साहित्यकार सजग रहता है। ज्ञानरंजन की कहानी पिता, उषा प्रियंवदा की कहानी वापसी,निर्मल वर्मा का उपन्यास अंतिम अरण्या, कृष्णा सोबती का समय सरगम आदि इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। सूरज सिंह नेगी का वसीयत उपन्यास समकालीन भारतीय समाज के बुजुर्गों और युवाओं के बीच के दरार को अपनी असलियत के साथ चित्रित करते हैं।

हिंन्दी साहित्य के क्षेत्र में वृद्ध-विमर्श का आगमन बहुत पुराना नहीं, बल्कि समकालीन संदर्भ में हुआ है। चित्रा मुद्गल की गिलिगडु, हृदयेश का चार दरवेश आदि वृद्ध समस्या को लेकर समकालीन साहित्य के क्षेत्र में हलचल मचा दिया है। इस परंपरा को अग्रसर करनेवाले लेखकों में प्रमुख है श्री सूरज सिंह नेगी। मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाले लेखक श्री सूरज सिंह नेगी के संपूर्ण कथा साहित्य में वृद्ध जीवन का जीवंत चित्रण मिलता है।

समकालीन हिंन्दी साहित्य के वरिष्ट साहित्यकार श्री सूरज सिंह नेगी का जन्म 17 दिसंबर 1967 को उत्तराखंड के अलमोडा जिले के नैकाणा नामक गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम श्री इंद्र सिंह और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी देवी था। अकाल में पिता की मृत्यु हुई इसलिए माँ की ही देखरेख में बचपन बीत गया। परिवार का वातावरण धार्मिक एवं आध्यात्मिक था। सूरज सिंह नेगी के शब्दों में - "मेरी माँ अनेक धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करती, नित्य प्रति पूजा-पाठ करती, व्रत लेती। जब भी कोई साधु आते उनको खाना खिलाकर विदा करती।"[3] बचपन से ही उनके व्यक्तित्त्व में करुणा, आस्था, मानवीयता, संवेदना आदि गुण विद्यमान थे।इन्होंने हाईस्कूल की पढाई पंडित गोविंद वल्लभ पंत हाईस्कूल से प्राप्त की। उसके बाद हायर सेकेंडरी 1983 में जयपुर के राजा रामदेव पोद्दार स्कूल से उत्तीर्ण की।1987 में जयपुर के कॉमेर्स कॉलेज से बी-कॉम प्राप्त किया। 1989 में राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.कॉम कर दिया।1994 में पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। 1990 में राजस्थान सरकार के जूनियर अकाउटेंट के पद पर नियुक्त हुआ,और बाद में 1998 में राजस्थान तहसीलदार के पद पर पहुँच गया। इसके बाद 1913 में राजस्थान सरकार के

अतिरिक्तजिला कलेक्टर एवं जिला मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य किया। इनकी पत्नी का नाम डॉ. मीना सिरोला और बच्चों के नाम तन्मय एवं शिवांग है।

सूरज सिंह नेगी अत्यंत कोमल, सौम्य एवं विनम्र व्यक्तित्त्व के धनी हैं। बचपन से ही उन्हें लेखन की ओर रुचि लगी थी।बचपन में अनेक बाल नाटक लिखे और मंचन भी किये। मास्टर जी उनकी पहली कहानी है। पापा फिर कब आओगे 2016 उनका प्रमुख कहानी संग्रह है। रिश्तों की ऑच 2016, वसीयत 2018, नियति चक्र 201, ये कैसा रिशता 2020 आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। उन्हें 2016 में मनुस्मृति सम्मान, 2017 में मुंशी प्रेमचंद हिंन्दी साहित्य सम्राट पुरस्कार, 2019 में उपेन्द्रनाथ अश्क पुरस्कार आदि से सम्मानित किये।

वसीयत सूरज सिंह नेगी का चर्चित उपन्यास है। युवा पीढी किस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर अपनी संस्कृति और संवेदना खो देती है, इसका यथार्थ एवं सहज चित्र उपन्यास में आँका गया है। इस उपन्यास में वृद्ध-जनों के प्रति संवेदनहीन समाज की समकालीन प्रवृत्तियों पर इशारा किया गया है। उनकी असहायता, अकेलापन एवं पिता पुत्र के आपसी रिश्तों की दूरियाँ आदि की अभिव्यक्तिउपन्यास में सहज रूप में हुई है। वर्तमान समय में वृद्ध माँ-बाप के सामने आनेवाली चुनौतियाँ, नयी पीढी की मनस्थितियाँ न समझने के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ तथा प्रवास एवं विस्थापन के कारण खाली होते गाँव आदि समस्याओं का चित्रण भी उपन्यास में रोचकता के साथ हुआ है।

उपन्यास का मुख्य पात्र विश्वनाथ उच्च शिक्षा प्राप्तकर विदेश जाना चाहता है। लेकिन पिता उनके दृष्टिकोण के प्रति सकारात्मक भाव प्रकट नहीं करते। लेकिन वह अपनी इच्छा के अनुसार शहर चला जाता है और अच्छा काम प्राप्त करता है। विश्वनाथ फिर कभी अपने गाँव वापस नहीं आता। बूढे माँ-बाप प्रत्येक अवसर पर बेटे की लौटने की प्रतीक्षा करते हैं, लेकिन इंतजार कभी खतम नहीं होता। बीमार माँ के अंतिम समय में विश्वनाथ उसे देखना चाहता है तो सरकार की तरफ से विदेश में नयी परियोजना मिलती है और माँ से मिलने की बजाय विदेश जाना पडता है।

समय बीत जाते हैं और विश्वनाथ सेवा निवृत्त हो जाता है। उनका पुत्र प्रसिद्ध सरजन बन जाता है। बेटे से मिलने के लिए उनका मन घुटता रहता है। इस समय विश्वनाथ के मन में पुरानी स्मृतियाँ आ जाती है और माँ-बाप के साथ किये बुरे बर्ताव पर तडपता है। विश्वनाथ की पत्नी सुधा सारा समय उसे सही दिशा पाने में सहयोग देती है और उसके विचारों को परिवर्तित करने की कोशिश करती है। इसी बीच विश्वनाथ को अपने पिता की डायरी मिलती है जिसे पढकर विश्वनाथ अपनी गलतफहमी समझ जाता है। विश्वनाथ गाँव वापस आता है तो वह चकित हो जाता है। गाँव में केवल बुजुर्ग, बच्चे और स्त्रियाँ दिखाइ देते हैं। अधिकतर युवा रोजगार की तलाश में विदेश चले गए हैं। विश्वनाथ के शब्दों में "देखकर हैरानी हुई कि अधिकांश घरों में ताले लगे हुए मिले। पूछने पर मालूम हुआ कि लोग पलायन कर रहे हैं ,जो बच्चे पढ लिखे जाते हैं वापस लौट कर नहीं आते। बूढे माँ-बाप की आँखें उनके इंतजार में पथरा जाती है।"[4]

विश्वनाथ का बेटा राजकुमार आधुनिक युवा पीढी का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास के अन्य पात्र त्रिपाठी,

अवस्थी, शर्मा जी चित्रा आदि भी ऐसे पात्र हैं जो वृद्धावस्था की मजबूरियाँ एवं विवशताएँ झेल रहे हैं। विश्वनाथ जब अपने पहाडी गाँव वापस आता है तो गाँव के बदलाव देखकर दुखी हो जाता है। पहाडी प्रदेश की हरियाली धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है और मोटर-वाहनों की बढती संख्या के कारण प्रदूषण भी बढ गया है। शुद्ध जलवायु,शांत वातावरण आदि नष्ट हो चुके हैं। विश्वनाथ को दादा जी की याद आती है उनका कथन भी याद आती है -कि अंधेरा होने के बाद पेडों से फल-फूल नहीं तोडना चाहिए क्योंकि रात को पेड भी आराम करते हैं। उपन्यास में उपेक्षित वृद्ध जीवन की समस्या के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की गरिमा, परंपरा, मूल्यबोध, प्रकृति के प्रति लगाव, बढती व्यवसायिक एवं तकनीकी संस्कृति का जीवन पर प्रभाव आदि की अभिव्यक्ति अत्यंत बारीकी से हुई है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण समकालीन युवा पीढी आधुनिकता के पीछे दौडती है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने जीवन को यांत्रिक बना दिया है। केवल धन ही जीवन का मूलमंत्र हो गया है, मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं को भूल जाते है । भौतिकतावाद के कारण पारिवारिक जीवन कृत्रिम बन गया। मनुष्य प्रत्येक संबन्धों को उपयोगिता की दृष्टि से देखता है। जिसके लिए उपयोग नहीं, वे सब तिरस्कार करना आधुनिक जीवन मंत्र है। वृद्ध लोग इसी श्रेणी में आते हैं क्योंकि वृद्धावस्था में उनके शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है, धन कमाने की क्षमता कम हो जाती है, पराश्रय हो जाते हैं, मान-सम्मान खो जाते हैं । वृद्धों को घर का सदस्य न मान कर कोई फालतू समझकर व्यवहार करते हैं। वे अपने ही घर में पराए महसूस करते हैं और जीने के लिए संघर्षरत हो जाते हैं। जीवन की संपत्ति लूटकर संतान अपनी दुनिया में जीवन का मजा चूस लेते हैं। वृद्ध स्वयं उपेक्षित एवं अकेला महसूस करते हैं या कभी-कभी वृद्धाश्रमों में जाना पडता है। वृद्धजनों की ऐसी दर्दनाक स्थिति को उजागर करने में वसीयत सफल बन गया है। जीवन मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाले लेखक नेगी के वसीयत में वृद्ध जीवन का सूक्ष्म निरूपण हुआ है। आदर्श के प्रति समाज को सचेत करना लेखक का लक्ष्य है।माँ-बाप अपना सर्वस्व संतानों के हित के लिए समर्पित करते हैं लेकिन वही संतान उनकी वृद्धावस्था में अपने दायित्व भूल जाते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति ने सामाजिक व्यवस्था में जो अप्रत्याशित परिवर्तन लाया है उसकी सहज अभिव्यक्ति वसीयत में हुई है।

नए वातावरण में वृद्धजनों का जीवन आशंकाओं से भरा है और अपने भविष्य के प्रति वे बडे आत्म-संघर्ष अनुभव करते हैं। पुत्र से पिता बनने की यात्रा को लेखक ने बडी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। उपन्यास में माँ-बाप की पीडा की कई ऐसी अनेक घटनायें हैं जिन्हें देखकर पाठक का हृदय पिघल जाता है। विश्वनाथ का पुत्र राजकुमार विश्वनाथ की वृद्धावस्था में निरंतर उपेक्षा करते हैं वही विश्वनाथ ने अपने पिता के साथ किया था। उन्हें अपने कर्मों पर पश्चाताप आता है।

वृद्धावस्था प्रकृति का नियम है, जिसे रोकना मनुष्य के लिए असंभव है।लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहता है कि वर्तमान समय में माँ-बाप अपना सब कुछ संतानों के लिए कुर्बान करते हैं लेकिन जीवन के अंतिम समय में वे उपेक्षित-सा रहते हैं। लेखक ने इस उपन्यास में वृद्धजनों की आंतरिक पीडा को बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

असोसियट प्रोफेसर & हेड
हिंदी विभाग, एस.एन.कॉलेज, कोल्लम

'परिवर्तन' और 'ओड ऑन इंटिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी' का तुलनात्मक अध्ययन - दार्शनिक धरातल पर

डॉ. कला.ए.

भूमिका : 'दर्शन' देखने की विशिष्ट एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है। स्थूल और सूक्ष्म को देखना ही दर्शन है। किसी जाति की संस्कृति को समझने के लिए उसके दर्शन और धर्म ग्रन्थों को जानना आवश्यक है। भारतीय चिंतन धारा में अद्वैतवाद की अनुभूति प्रमुख है। आध्यात्मिक रंग में रंगी कविता की प्रधानधारा रहस्यवाद है, जो साधना के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है। विभिन्न दर्शनों द्वारा छायावादी कवियों ने ब्रह्म, आत्मा, जीव, जगत, माया, जड़-चेतन आदि तत्व विचारों को काव्यमयी भाषा द्वारा अनुप्राणित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। छायावादी कवियों का हृदय व्यापक सहानुभूति, आत्मीयता और करुणा के भावों से परिपूर्ण था। प्रकृति में जिस अनजान सत्ता के दर्शन पंत जी ने किया क्रमशः उसी ने उनके दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यापक बना दिया।

सुमित्रानंदन पंत की 'परिवर्तन' कविता

परिवर्तन पंत जी के प्रमुख काव्य संग्रह 'पल्लव' में सकलित लंबी कविता है। यह कविता सन् 1926 में प्रकाशित हुई थी जो कवि के जीवन काल का एक विशिष्ट समय था जब ऐहिक विपत्तोयों का ठोकर खाकर जीवन की वास्तविकता के प्रति सर्वप्रथम कवि का ध्यान केन्द्रित हुआ। प्रस्तुत कविता में कवि कहते हैं कि जीवन में सब परिवर्तनशील होते हैं और सब मरणशील हैं। मनुष्य व उनकी भावनाएँ विनाश चक्र में पिसकर नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् सामाजिक संबंध, रिश्तेदारों, काव्य, कला आदि सभी परिवर्तनशील हैं। यह दार्शनिक चिंतन अत्यंत प्राचीन है। इस दर्शन को अत्यन्त प्रभावशाली बनाने के लिए पंत जी प्रस्तुत कविता में प्रयास करते हैं।

प्रकृति का सुकुमार कवि पंत जी को हिन्दी में अंग्रेज़ी का विलियम वर्डस्वर्थ कहा जाता है। पंत जी स्थूल से सूक्ष्म की ओर आकर्षित होते हैं। वे अपनी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अपनी कविता में सूक्ष्म प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग करते हैं।वे प्रकृति के स्थूल रूप का बहिष्कार करके उसे चेतना विस्तारक रूप देते हैं। पंत जी 'परिवर्तन' कविता में अध्यात्मिक मूल्यों को महत्व देते हैं। पंत जी भारतीय तथा पश्चिमी दर्शनों के आधार पर दार्शनिक प्रवृत्तियों को विकसित करते हैं। उनकी परिवर्तन कविता को दार्शनिक काव्य भी कहा जा सकता है। परिवर्तन को कवि जीवन का शाश्वत सत्य मानते हैं ।

ईश्वर, जीव, प्रकृति और इसके अंतर्गत आनेवाले जीवन, मृत्यु, सुख, दुख आदि इस कविता में देख सकते हैं । पंत जी उक्त कविता का आरंभ खो गए एक सुवर्णकाल की याद से करते हैं । पंत जी परिवर्तन कविता में प्रकृति की कोमलता, सुकुमारता एवं मधुरता ही नहीं उसकी कठोरता, निष्ठुरता एवं निर्दयता को भी दर्शाते हैं। पंत जी समझते हैं कि सब मिथ्या बात हैं।

पंत जी यों कहते हैं कि यहाँ सदैव सौरभ का मधुमास ही नहीं होता अपितु वह मधुमास भी शिशिर में सूनी साँसें भरता है। एक ओर कवि स्वर्ण भृंग के गंध और विहार के बारे में कहते हैं और दूसरी ओर वासुकि के सहस्रफन की शत-शत फेनोच्छवसित स्फीत फूत्कार शब्द सुनने लगता है। कवि सृष्टि की घटनाओं पर विचार करते हैं । वे कहते हैं कि सुखद चाँदनी रात चार दिन के लिए हैं और अंधकार आता है। प्रातःकाल में संसार सूरज की शोभा में सोने जैसा लगता है अर्थात् प्रतीक्षा है एक सुंदर दिन की। लेकिन यह दिन भी शाम को अस्त होनेवाली सूर्य की ज्वालाओं में जल जाता है। बचपन में गात कोमल होता है और बाद में जरा के कारण पील पात हो जाते हैं। मिलन केवल दो -चार पल का है लेकिन बिरह एक कल्प समान अपार है। किसी को आज सोने समान सुखसाज होते हैं तो कल

ही ब्याज सहित चुका लेना है। यानि पंत के अनुसार आज का दुख कल का आह्लाद है। एक ओर जन्म होता है और दूसरी ओर क्षण -क्षण मृत्यु अपने नयन मूँदती है। जगत की अस्थिरता देखकर समीर शून्य निश्वास भरते हैं। जगत के परिवर्तन को कवि निष्ठुर कहते हैं। संसार में सुख तो सरसों के समान अत्यंत अल्प मात्रा में मिलता है और दुःख सुमेरु के समान अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होता है। परिवर्तन के कठोर स्पर्श से विश्व में प्रलय मच जाती है, संसार में युद्ध होने लगते हैं और बड़ा साम्राज्य नष्ट हो जाता है।

यह परिवर्तन अत्यंत क्रूर, कठोर एवं निर्दय है। जीवन और जगत में नित्य नई नई स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती है और परिवर्तन के इस चक्र में पिसता हुआ जीवन सदैव हाहाकार भरते रहता है। जगत में होनेवाले इस परिवर्तन को देखकर वे उदास हो जाते हैं। वे निराशा और विरक्ति में पड़ जाते हैं। लेकिन पंत जी अपनी निराशा और विरक्ति में भी आशा नहीं छोडते हैं। वे सदैव आशावादी ही रहते हैं। सुख-दुख में समरसता स्थापित करते हैं। इसलिए कवि विनाश और सृजन दोनों को महत्वपूर्ण समझते हैं।

कवि कहते हैं कि इस नश्वर संसार में शांति नहीं मिलती। सृष्टि का तात्पर्य ही अशांति है। सपने में ही आराम मिलता है। इस संसार में सृष्टि, पोषण और संहार का क्रम सदा चलता रहता है। आकाश में मेघ बनते हैं। हवा बहती है तो बिछुड जाती है। थोड़ी देर बाद फिर मेघ बनते हैं । इसी प्रकार का परिवर्तन सभी तलों में चलते रहते हैं।

पंत जी का रहस्यवादी विचार भी इस कविता में देख सकता है। मानव दिव्य सौंदर्य तथा स्नेह को अपनी भावनाओं के अनुसार अनेक रूपों में देखता है। पंत जी ब्रह्म सत्यम जगन्मिथ्या के सिद्धांत पर परिवर्तन सत्यं जगन्मिथ्या के सिद्धांत की स्थापना करते हैं कवि परिवर्तन को ही प्रज्ञा का सत्यस्वरूप बताते हैं। इस प्रकार परिवर्तन को कवि पूरे विश्व में व्याप्त सूत्रधार के तुल्य बताता है। इसी में कई युगों और कल्पों को विलीन होते हुए सिद्ध करते हैं। इसी में असंख्य रवि, शशि, ग्रह, उपग्रह आदि को जलते बुझते हुए कहते हैं। इसी को चिरंतन कहा है।

इस प्रकार कवि एक ओर जगत की अचिरता, निस्सारता एवं नश्वरता का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर परिवर्तन की शाश्वतता और अनश्वरता का निरूपण करता है, क्योंकि जो जगत् सतत् परिवर्तनशील दिखाई देता है। कवि सिद्ध करते हैं कि जीवन और जगत् की एक ही स्थिति नहीं होती, अतः सुख-दुख , प्रकाश-अंधकार अनित्य है, सदैव नहीं रहते , इनके साथ इनमें होनेवाला परिवर्तन भी सत्य है और चिरंतन है। कवि को लगता है कि जहाँ दुख है वहाँ सुख भी है। जीवन का एक नित्य सत्य है जीवन सदैव परिवर्तित करता रहता है। सिर्फ प्रकृति के कोमल रूप को लिखनेवाला कवि परिवर्तन कविता में प्रकृति के भयावह रूप को भी दर्शाता है। कवि प्रकृति के विराट रूप में किसी न किसी सत्य की खोज करते हैं। प्रस्तुत कविता में विश्वमानवता का चित्रण मिलते हैं। कवि चाहता है कि इस नश्वर जीवन में परोपकार करके शांति सुख पा लेना। परिवर्तन ही जीवन का सत्य है। कवि के चार भाव हम इस कविता में देख सकते हैं यानि अधिक कोमलता, ऐश्वर्य की समृद्धि, आदि प्रकृति में देखना, दूसरा तो यह सब मिथ्या बात है चारों ओर व्याधि, दुख, प्रकृति की आपदाएँ देखना, तीसरा भाव यह है कि दुख और सुख दोनों जीवन में परिवर्तित होकर आते जाते हैं। बिना दुख के जीवन अधूरा है दुख और सुख एक सिक्के के दो पहलु होते हैं। इसलिए जीवन से भागने की आवश्यकता नहीं है। बहुत ही साहस से जीवन की सभी समस्याओं से जूझना है। साधना करना जीवन का मूल माना जाता है। चौथा भाव तो यह है कि परिवर्तन अटल सत्य, निर्वचनीय और शाश्वत होते हैं।

वर्डस्वर्थ के दार्शनिक विचार - ओड इन्टिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी का संदर्भ

विलियम वर्डस्वर्थ की 'ओड-इंटिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी फ्रम रिकलक्शन्स ऑफ एर्ली चाइलडहुड' प्रकृति-परक कविता के साथ दार्शनिक भी है। वर्डस्वर्थ प्रस्तुत कविता की शुरुआत एक कहावत से करते हैं , जो इस कविता का विषय बन जाता है। (Child is

father of the man) उक्त पंक्तियाँ उनकी एक दूसरी कविता 'माई हार्ट लीप्स अप' (My Heart Leaps Up) से ली गई है । इसका मतलब यह है कि बच्चा बड़ों से भी समझदार होता है । प्रस्तुत ओड कविता में वर्डस्वर्थ मानव के पूर्व जन्म अस्तित्व के बारे में बताते हैं । यह विचार उनकी अफ्लातूनीन प्रभाव का उदाहरण है । अफ्लातूनीन दर्शन से प्रभावित होकर वर्डस्वर्थ ने प्रस्तुत कविता का शीर्षक ओड इन्टिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी फ्रम रिकलक्शनस ऑफ एरली चाइलडहुड रखा (Ode-Intimations of Immortality from Recollections of Early Childhood)। लेकिन वर्डस्वर्थ पूर्ण रूप से इसका अनुकरण नहीं करते हैं। वर्डस्वर्थ खो गए एक सुवर्णकाल की याद करते हैं । वे अपने बचपन में प्रकृति की वस्तुओं में एक स्वर्गीय शोभा की झलक देखता है । लेकिन बड़े होने के बाद उसे देख नहीं पाते । वर्डस्वर्थ अपनी प्रौढ़ावस्था में गायब हुई उस दिव्य शोभा की याद में रोते हुए दिखाई पडते हैं। वे कहते हैं कि जो चीज़ें मैंने देखी हैं अब कहीं भी देख नहीं पाती। वे इस सिद्धांत का प्रयोग अपनी कविता में यों करते हैं कि "बचपन में जो ईश्वरीय शक्ति अपने साथ होती है वह बडे होने पर गायब हो जाती है। प्लेटो की राय में आत्मा इस धरती पर जन्म लेने से पहले स्वर्ग में रहती है।

पूर्व जन्म अस्तित्व के बारे में वर्डस्वर्थ का विचार यह है कि इस धरती पर मानव का जीवन निद्रा के जैसै हैं। निद्रा में मानव अपना सही अस्तित्व भूल जाते हैं। उनकी राय में मानव का घर स्वर्ग है। आत्मा स्वर्ग से इस धरती पर आती है और अंत में स्वर्ग लौट जाती है।

प्लेटो का स्मृति सिद्धांत और वर्डस्वर्थ के विचार में कुछ अंतर हैं। प्लेटो के अनुसार आत्मा इस धरती पर जन्म लेती ही वह अपना पूर्व अस्तित्व भूल जाती है। लेकिन वर्डस्वर्थ के अनुसार पूर्व जन्म की यादें बचपन में मानव के साथ ही होती है। बच्चों को स्वर्ग की कुछ यादें होती है। लेकिन युवावस्था में वे यादें उनसे नष्ट हो जाती है। प्रौढ़ावस्था में मानव धरती की माया में फँसकर सब भूल जाता है।

इस कविता में वर्डस्वर्थ दो तरह के बचपन के बारे में बताते हैं यानि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप का बचपन। प्रत्यक्ष रू प में बच्चा अपना बचपन व्यस्त रूप में बिताता है और परोक्ष रूप में बचपन एक याद की तरह हमारे मन में रह जाती है। प्रसिद्ध आलोचक अलेक किंग ने इन दो तरह के बचपन को invisible childhood कहा है। वर्डस्वर्थ छः साल के एक छोटे बच्चे का चित्रण करते हैं। यह बच्चा विसिबिल चाइलडहुड का उदाहरण है।

"Behold the child among his new-born blisses
A six years Darling of a pigmy size."[3]

वर्डस्वर्थ दूसरे बच्चे का चित्रण रूपक एवं मिथक के द्वारा यों करते हैं। कवि बच्चे को mighty rophet, thou best philosopher, blessed seer, thou eye among the blind आदि नाम से पुकारते हैं। यह बच्चा इनविसिबिल चाइल्डहुड का उदाहरण है। उक्त बच्चा ईश्वर के बहुत निकट है।

वर्डस्वर्थ जगत के बारे में अपना विचार यों व्यक्त करते हैं कि जगत माया है। बच्चा इस धरती के सुखदुखों में पड जाता है। वह सांसारिक दुःखों के भार में झुक जाता है। धरती पर लगे बर्फ के समान मानव सांसारिक आकुलता में डूब जाते हैं। मानव जगत की माया में फंसकर अपने पूर्व जन्म अस्तित्व भूल जाते हैं। स्वर्ग की याद उनसे नष्ट हो जाती है। इस कविता के द्वारा वर्डस्वर्थ में अंतर्लीन रहस्यवादी कवि का चित्रण देखने को मिलता है।

पंत जी परिवर्तन कविता में ईश्वर या अज्ञात सत्ता का विवरण यों देता है। कहीं वह सत्य, वेद विख्यात/ दूरित, दुःख, दैन्य न थे जब ज्ञात"4 उक्त पंक्तियों में पंत जी वेद, उपनिषद आदि में वर्णित ईश्वर या ब्रह्म को ढूँढते हैं। इस अज्ञात सत्ता का अनुभव करते समय दुरितों दुख, दैन्य जरा, मरण आदि कोई चिंताएँ नहीं होतीं। यहाँ पंत जी खो गए एक सुवर्णकाल की याद करते हैं। स्थूल प्रकृति में वे सूक्ष्म सत्ता को ढूढते हैं। पंत जी की दृष्टि प्रकृति या जीव के भीतर के सत्य या आत्मा का अन्वेषण करती है। प्रकृति की सारी वस्तुओं

में ब्रह्म का अंश है। पंत जी उसी को ढूँढते हैं। उस असीम शक्ति की खोज ही अध्यात्मवाद है।

ठीक इसी प्रकार वर्ड्स्वर्थ भी ओड़ में अज्ञात सत्ता या ईश्वर को खोजते हैं। वर्डस्वर्थ ईश्वर के बारे में अपना विचार यों व्यक्त करते हैं

"There was a time when meadow, grove And stream,/The earth and every common sight,/To me did seem/Apparalled in celestial light,/ The glory and freshness of a dream"

उक्त पंक्तियों में वर्डस्वरथ एक दिव्य परिवेश के बारे में कहते हैं। उन्हें लगता है कि पहले प्रकृति के घास के मैदान, वृक्षों का गोल झुंड, धारा, पृथ्वी और हर आम वस्तुएँ एक दिव्य प्रकाश से आच्छादित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे दृश्य स्वप्न समान महत्वपूर्ण और ताज़ा भी हैं। वर्डस्वर्थ कहते हैं कि अब सब गायब हो गए हैं।

यहाँ वर्डस्वर्थ भी पंत जी के समान स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाते हैं। वर्डस्वर्थ और पंत दोनों प्रकृति में असीम सत्ता का अन्वेषण करते हैं। यहाँ दोनों कवि समान चिंताएँ प्रकट करते हैं। दोनों कवि बीते हुए एक दिव्य परिवेश की खोज में जाते हैं जो प्रकृति में व्यापक है। पंत जी और वर्डस्वर्थ एक ही सवाल पूछते हैं। पंत जी पूछता है कि कहाँ वह सत्य वेद विख्यात्? दोनों कवि एक ही बात दो शब्दों में व्यक्त करते हैं। वर्डस्वर्थ उसे celestial light कहते हैं।

जीव

जीव में होनेवाले परिवर्तन के बारे में पंत जी अपने परिवर्तन कविता में बहुत अधिक कहते हैं। वे जीव और जीवन की परिवर्तनमयी स्थिति का चित्रण उक्त कविता में विस्तार से करते हैं।

जीव में होनेवाले परिवर्तन का चित्रण करते हुए वे यों लिखते हैं -"आज बचपन का कोमल गात/जरा का पीला पात।/चार दिन सुखद चाँदनी रात/और फिर अँधकार अज्ञात/और "स्वर्ण शैशव स्वप्नों का जाल/मंजरित यौवन सरस रसाल/प्रौढ़ता छायावट सविशाल,/स्थविरता,नीरव सायंकाल।।[6]

पंत जी उक्त पंक्तियों में मानव में होनेवाले परिवर्तन को बड़े रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं। इन पंक्तियों में पंत जी मनुष्य के चार अवस्थाओं का वर्णन करता है। शैशव, यौवन, प्रौढ़, बुढ़ापा। यह है मानव के चार अवस्थाएँ। जगत के सभी प्राणियों में ये चार अवस्थाएँ होती हैं। यह प्रकृति का आचार हैं। इसी के अनुसार ही सृष्टि के सभी जीवजाल आगे बढ़ रहे हैं। बचपन में शरीर बहुत कोमल होता है ऐसा ही पेड़ के कोंपल, बुढ़ापे में शरीर पीला और असुंदर हो जाता है।

पंत जी इन पंक्तियों द्वारा एक मुख्य दार्शनिक तत्व को दर्शाते हैं। हमारे जीवन में भी चार दिन चाँदनी जैसे सुखद अनुभूतियों या प्रकाश से भरे होते हैं, और फिर अज्ञान अंधकार के समान दुख छा जाता है। उसकी राय में शैशवकाल बहुत ही सुंदर होता है, यौवन स्वप्नों के जाल से मंजरित होता है। प्रौढ़ावस्था सरस एवं रसाल है बूढ़ापे में खामोश है। ठीक इसी प्रकार वर्डस्वर्थ भी अपने ओड़ में मानव के चार अवस्थाओं में होनेवाले परिवर्तन का एक काव्यमय चित्रण देते हैं। वे यों लिखते हैं "जब मानव इस धरती पर जन्म लेते हैं तो उसके मन में जन्मपूर्व अस्तित्व की याद होती है। लेकिन जो याद धीरे धीरे नष्ट हो जाती है , और प्रौढ़ावस्था में यह याद पूरी तरह से गायब हो जाती है।

वर्डस्वर्थ इस संसार में जन्म लेने को दूसरे देश से आगमन मानते हैं। उनके अनुसार मानव (जीव) का वास्तविक घर दूसरा है।

जगत और माया

पंत जी जगत और माया के बारे में यों कहते हैं

"कहाँ नश्वर जगत में शांति/सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति/ जगत अविरत जीवन संग्राम/स्वप्न है यहाँ विराम/एक सौ वर्ष नगर उपवन/एक सौ वर्ष विजय वन/वही तो है असार संसार/सृजन, चिंतसन, संहार"[8]

उक्त पंक्तियों में पंत जी जगत की परिवर्तनमयी स्थिति का वर्णन करते हैं । इस स्थिति के कारण ही पंत जी जगत को नश्वर कहते हैं । उनकी राय में नश्वर जगत में शांति नहीं मिलती और सृष्टि का अर्थ ही अशांति

है। क्योंकि मानव को जीवन में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जगत में सुख-दुःख, आशा-निराशा आदि साथ-साथ होते हैं। जीवन सदा एक ही स्थिति में नहीं रहता। जीने के लिए मानव निरंतर संघर्ष करते हैं। यहाँ शांति या विराम एक सपना है। मानव इस स्थिति को सत्य मानकर दुःख और निराशा में पड़कर माया में फँस जाता है। जगत की सारी वस्तुएँ नश्वर हैं। इसे समझे बिना सुख पाने के लिए मानव सदा प्रयत्नशील रहता है। एक सौ वर्ष नगर उपवन है और उसके बाद वो विजन हो जाता है। इसलिए कवि जगत को असार कहते हैं। जगत् में सृष्टि, पालन और संहार होते ही रहता है। जगत दिन और रात का मायाजाल है। आकाश में मेघ बनते हैं और फिर बिछुड़ जाते हैं। इस विशाल विश्व में दिन रात में और रात दिन में बदल जाने का क्रम निरंतर चलता रहताहै। आज के बड़े बड़े हर्म्य भवन उलूकों का वासस्थान बन जाते हैं और झिलियाँ झंकार करने लगती हैं।

यदि मनुष्य जगत् का अर्थ जानता सृष्टि, स्थिति, संहार की प्रक्रिया को समझता तो उसे दुःख न होता। लेकिन वह इस दुनिया के मायाजाल में पड़कर निरंतर जीवन-समर करता रहता है।

पंत जी ने कहा कि जगत् में होनेवाले परिवर्तन में मन को शांति नहीं मिलती। मनुष्य एक भ्रम में डूब जाता है। यह भ्रम ही माया है।

इसी प्रकार वर्डस्वर्थ अपनी ओड-इंटिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी में जगत् और माया की अभिव्यक्तियों करते हैं

इस धरती पर जन्म लेने के बाद धीरे धीरे मनुष्य (जीव) के मन से अपने घर की स्मृतियाँ धुँधली होने लगती है अर्थात् वह स्वर्ग का अपना पूर्व अस्तित्व भूल जाता है। क्योंकि धरती की गोद में सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ होती हैं। वर्डस्वर्थ की राय में धरती दूसरी माँ है। धरती अपने बच्चे को एक नर्स के समान पालन पोषण करती हैं। बचपन में बच्चे (जीव) को खिलौने के साथ भ्रम होता है और माता पिता के प्रेम में ईश्वर को वह भूलने लगता है। यौवनावस्था में किसी प्रेम में पड़कर उसकी पूर्व अस्तित्व की याद पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है और बाद में जीवन समर में लड़ते रहता है। मनुष्य धरती या जगत् के सुख दुःख, आशा-निराशा और सभी अवसादों में डूब जाता है। माया के कारण मनुष्य का मन ईश्वर से बिछुड़ जाता है।

पंत और वर्डस्वर्थ दोनों कवियों ने जगत् और माया तत्व का चित्रण रोचक ढंग से किया है। दोनों के दार्शनिक विचारों में काफी समानताएँ होते हुए भी असमानताएँ भी देखने को मिलती हैं।

भाषा : परिवर्तन कविता की भाषा खडीबोली हिंदी है, जिसको कवि ने भावों के अनुकूल ढ़ालने के लिए उसे भली प्रकार कोमलता और सुकुमार बनाया है। वर्डस्वर्थ ने क्लासिकी युग की अभिजात भाषा के विरुद्ध जनसाधारण भाषा का प्रयोग किया है। दोनों कवियों ने अर्थ के अनुसार उचित शब्दों का प्रयोग किया है। दोनों कवियों ने अपने ध्यानात्मक निरीक्षण से कविता की रचना की है ।दोनों की चिंता तथा भाव ओस के समान ताज़ा तथा नवीन है।

प्रस्तुत कविता में रसों के विभिन्न चित्र हम देख सकते हैं। कुछ पंक्तियों में श्रृंगार का अरुण रस आते हैं और कुछ पंक्तियों में बीभत्स रस का चित्र होता है। जिसप्रकार मानव के मन में कोमल और भयानक भाव बदलते रहते हैं ठीक उसी प्रकार पंत जी परिवर्तन को कोमल और भयानक कहते हैं।

पंत जी ने लिखा है, अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं भाव की अभिव्यक्ति के लिए विशेष द्वार है, वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हावभाव है। पंत जी ने खड़ीबोली को अपनी काव्य भाषा बनायी। कविता में मुक्त छंद का प्रयोग किया गया है।

परिवर्तन कविता में उपमा, रूपक , रूपकातिशयोक्ति आदि बहुलता से पाये जाते हैं। मानवीकरण का भी प्रयोग परिवर्तन कविता में देख सकते हैं ।

वर्डस्वर्थ की ओड इन्टिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टालिटी फ्रम रिकल्कश्न्स ऑफ एरली चाइल्डहुड कविता 11 छंदों में एक अनियमित पिंडारिक ओड है। इस कविता की पंक्तियों और छंदों की लंबाई भिन्न भिन्न होती है। लय, छंद और शैली में परिवर्तन का उद्देश्य कविता में व्यक्त भावनाओं को मेल खाने के लिए हैं। कविता का वर्णन आंतरिक एकालाप शैली में है। जो वार्तालाप कविता कह सकते हैं। जो बाइबिल के धार्मिक परंपराओं और प्लेटो के स्मृति सिद्धांत के आधार पर लिखा गया है। कविता पूर्व अस्तित्व की अवधारणा पर निर्भर करती है। इस कविता में कवि सूचित करते हैं कि आत्मा शरीरधारण से पहले ही विद्यमान है। बच्चे अपनी शिशु अवस्था में ईश्वर और स्वर्ग की स्मृतियों में रहते हैं। लेकिन आगे चलकर इस सांसारिकता में पड़कर उनका जो दिव्य दृष्टि नष्ट हो जाती है।

वर्डस्वर्थ प्रस्तुत ओड में कई साहित्यिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं। एसोनन्स (स्वरावृत्ति), एनाफोरा (एक या दो पदसमूहों की शुरु आत में एक शब्द या शब्दों की आवृत्ति), अलिटरेशन (अनुप्रास), इमेजरी (बिंबविधान), सिंबोलिसम, (प्रतीक), मेटाफोर (स्पक), पेर्सोनिफिकेशन (मानवीकरण) आदि।

निष्कर्ष

इतने कहने से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों कविताओं के आधार पर वर्डस्वर्थ और पंत की दार्शनिक विचारों पर कई समानताएँ होती हैं। वर्डस्वर्थ भी पंत जी के समान स्थूल से सूक्ष्म की ओर चले जाते हैं। दोनों प्रकृति में असीम सत्ता का अन्वेषण करते हैं। दोनों बीते हुए एक दिव्य परिवेश की खोज में हैं। वर्डस्वर्थ और पंत दोनों इस संसार में परिवर्तनशीलता का वर्णन करते हैं। इन साम्यों के अलावा दोनों कवियों में कुछ वैषम्य भी देखने को मिलता है। वर्डस्वर्थ द्वारा शिशु से संबंधित दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन पंत जी की दार्शनिकता शंकराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित दिखाई देता है। परिवर्तन के चित्र पल में सुंदर और पल में भयानक होते रहते हैं। प्रकृति और प्रेम के कोमल कल्पना का कवि परिवर्तन शीर्षक कविता में जगत की भीषणता, नश्वरता और कठोरता देखने लगा। उन्हें जगत की यथार्थता का ज्ञान हुआ और सारा विश्व विनाशशील लगा। अपने जीवन में आए हुए क्रूर परिवर्तन ने उनके हृदय को विश्वजनीन करुणा से भर दिया।

संदर्भ ग्रन्थ

1. K.N. Khandelwal - selected Poems - William Wordsworth p 59-60
2. वही p- 63
3. वही p-62
4. वही -57
5. वही p-62
6. वही p-63
7. वही p- 62
8. सुमित्रानंदन पंत परिवर्तन कविता कोश
9. K.N. Khandelwal - selected Poems - William Wordsworth p -62

सहायक ग्रन्थ

1. (राजाभाषा हिन्दी गुरुवार 11, अगस्त 2011, छायावाद और स्वच्छंदतावाद, अनामिका)।
2. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
3. (हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरीणी प्रचारिणि सभा, द्वितीय संस्करण, सं.1999)

डॉ.कला ए

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
भारतमाता कॉलेज, त्रिक्काकरा, एरणाकुलम,
कोच्चि, 682021

परिवेशगत यथार्थ के बीच : फणीश्वरनाथ रेणु

डॉ. अनिता.पी.एल.

साहित्य मानव समाज की सांस्कृतिक धरोहर है। साहित्य देश के इतिहास और संस्कृति का निर्माण करता है। साहित्य रचना ऐसी मानव क्रिया है जो सामाजिक जगत से सामग्री ग्रहण कर उसे एक विधान में इस तरह गुंफित करती है कि व्यक्ति उसे पढ़कर या देखकर मुग्ध हो जाए उसमें तल्लीन या रसमग्न हो जाए। जो कृति इतना काम करने में सक्षम होती है, उसे ही हम साहित्य कृति कहने का दावा करते हैं। प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नये रूप आकार लेते हैं।

उपन्यास मानव जीवन की संपूर्णता को यथावत प्रस्तुत करने में सक्षम है। उपन्यास का काम इस नये युग के नये मानव की वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुए हैं। उपन्यासकार के लिए आज मानव जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। मानव जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी पक्ष बहुत खुलकर आज उपन्यासों में आने लगे हैं। स्वाधीनता के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनेक विषयगत एवं रचनागत प्रयोग हुए हैं । उनमें आंचलिक बोध का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'अंचल' से तात्पर्य ऐसे स्थान और जाति विशेष से है, जो आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने आप में एक इकाई हो, और जिसके जीवन की कुछ निजी विशेषताएँ हों।

अंचल हमारे सामाजिक जीवन का एक कोना है, अंचल में हम मनुष्य का आदिम-प्रारंभिक रूप देख सकते हैं। हम आदिम उसको कहते है जो आधुनिक नहीं है। आज हमारे इस आधुनिक दशा तो वैज्ञानिक प्रगति की देन है। लेकिन कभी भी हम इस आदिम प्रारंभिक रूप को चुनौती भरे, घृणा भरे और व्यंग्य और हास परिहास से नहीं देखते बल्कि उसे आदि सहचरी मानकर उसमें अटूट-आस्था रखता है। यह तो सत्य है कि अंचल की अपनी भौगोलिक विशेषताओं के कारण वह देश की शेष जीवन धारा से कट जाता है। लेकिन यह तो गलत नहीं है। यदि हम उस अंचल को पहचान और समझ सकते हैं तो हमें मालूम होना चाहिए कि हमने सभ्यता के आवरण से रहित मूल मानव को ही समझ लिया है। अंचल में जो संस्कृति पाई जाती है वह वहाँ की परिस्थितियों का ही परिणाम है। शंभूनाथ कहते हैं कि -"आंचलिक होने का अर्थ किसी क्षेत्र के जीवन में डूबकर खप जाना नहीं होता, इसमें बहकर इसकी धाराओं को समेटते हुए क्रान्तिकारी जीवन स्तर पर चलना ही आंचलिक संलग्नता है । यह जनक्षेत्रों से गहरी संलग्नता का नाम है।"[1] डॉ.नगीना जैन के अनुसार "अंचल एक जीवन्त व्यक्तित्व है, नायक है। जैसे एक व्यक्तित्व की कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं, उसकी प्रकृति होती है, जो उसे अन्य अनेकानेक व्यक्तियों की सामान्य गति स्थिति से पृथक करता है, ठीक वैसे ही अंचल अपनी संपूर्ण विविधता एवं समग्रता के साथ एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है, जीवन्त और जटिल। समस्त भूमि का अंग होकर भी अपनी विशिष्ट इकाई, विशेष भूखण्ड-न्यारा और विशेष"[2] अंचल का अभिप्राय ऐसे स्थान विशेष से है जो आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने आप में एक इकाई हो और जिसके जीवन की कुछ निजी विशेषताएँ हो। ये निजी विशेषताएँ किसी दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत कर देती हैं।

किसी अंचल विशेष के निवासियों के जीवन एवं

प्रगति को सविस्तार करनेवाले लेखकों की प्रवृत्ति आंचलिकता कही जा सकती है। विशिष्ट भौगोलिक स्थितियों के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ, मान्यताएँ वहाँ के संस्कार और अंधविश्वास, रीतिरिवाज़ आदि उस अंचल को आंचलिकता प्रदान करते हैं। रेणु की रचनाओं के माध्यम से ही आंचलिकता एक बड़े आन्दोलन की तरह उपस्थित हुई । भारतीय जन-जीवन का यथार्थ चित्र उभारने में रेणु सफल रहे । रेणु की दृष्टि केन्द्र में बिहार के पूर्णिया जिले और परानपुर के उपेक्षित भूभाग रहे हैं। मिथिला के इन ग्राम्य क्षेत्रों को उनकी समग्रता में उजागर करने के लिए रेणु ने वहाँ के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक,धार्मिक और भौगोलिक परिवेश को अपने व्यापक रूप से उभारा है । रेणु की दृष्टि मूलतः मानवतावादी है। उन्होंने आंचलिक परिवेश, आंचलिक जीवन की दैनिक घटनाओं, लोकगीतों, बोली-बानी, रीति-रिवाज़ों, उत्सवों, प्रथाओं आदि के व्यापक अंकन के साथ बिहार के देहाती जीवन की समस्त कटुताओं, विडंबनाओं, अंधविश्वासों, विकृतियों, मान्यताओं आदि को अपनी रचनाओं में मुखरित किया है।

इस दृष्टि से देखे तो फणीश्वरनाथ रेणु का 1965 में प्रकाशित 'जुलूस' उपन्यास को आंचलिक उपन्यास की कोटि में रख सकते है। 'जुलूस' उपन्यास पूर्वी पाकिस्तान याने बंगलादेश से आए उन शरणार्थियों की कथा है जो देश विभाजन के परिणाम स्वरूप पूर्णिया जिले गोड़ियर गांव में बसे हुए है। गोड़यर गांव और वहाँ के शरणार्थी बस्ती नबीनगर को केन्द्र बनाकर रेणुजी ने प्रस्तुत उपन्यास में अनेक विषमताएँ जैसे शरणार्थियों की समस्याएँ, प्रांतीयता की समस्याएँ, जातीयता का भेदभाव, स्वार्थ की भावना, स्त्री-पुरुष का भेद-भाव, आर्थिक विषमता, अंधविश्वास आदि को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

कथानक का प्रारंभ उपन्यास की नायिका पवित्रा के घर से शुरू होता है। पवित्रा का घर उपन्यास का केन्द्रीय घटनास्थल है। फिर धीरे धीरे घटनास्थल की परिधि बढ़कर नबीनगर तक विस्तृत होता है फिर वहाँ से भी विस्तृत होकर गोड़ियर गाँव की परिधि तक आते हैं। नबीनगर गोड़ियर गाँव की ही एक बस्ति है। नबीनगर के समाज और गोड़यिर के समाज के व्यक्तियों के घात प्रतिघातों के माध्यम से कथानक विकसित होता है। गोड़ियर गांव का सबसे संपन्न आदमी है तालेवर गोड़ी। वह अपनी मुट्ठी में गोड़ियर गाँव को बंध करके रखा है। अपने स्वार्थ के लिए गांव के लोगों का शोषण करते रहते हैं। लेकिन रेणुजी की दृष्टि मुख्यतः पवित्रा पर केन्द्रित है। पवित्रा स्वजनों और प्रियजनों से बिछुड़कर शरणार्थी के रूप में पूर्व बंगाल से भारत पहुँच गई है, और शरणार्थी कैंप के लोगों के बीच पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति पनपाने का प्रयत्न करती है। लोकसंस्कृतिमूलक समाज का गठन रेणु का स्वप्न है। उस स्वप्न को साकर करने के लिए रेणु ने इस उपन्यास में पवित्रा को चुना है।

नबीनगर बसाए शरणार्थी वास्तव में बंगलादेश के जुमापुर के लोग हैं । प्रांतीयता का भेदभाव बंगलादेश से आए लोगों और गोड़ियर गाँव के लोगों के बीच में है । दोनों समाज के लोग एक दूसरे को अलग मानते हैं। इसलिए ही नबीनगर को गोड़ियर के लोग 'पाकीस्तानी टोला' कहते हैं, यह भी नहीं बिहार के स्थानीय लोग उन्हें 'बंगाली-कंगाली' कहकर मज़ाक उठाते हैं। इन लोगों के बीच में ईर्ष्या द्वेष का एक अन्य कारण नेतृत्व की महत्वाकांक्षा भी है। सरस्वती गोड़यिर गांव की पढ़ी-लिखी औरतों में से एक है। उसे लगती है कि गांव में उसके रहते हुए बंगालिन औरत पवित्रा लीड़र बन जाए तो बिहारियों के लिए लज्जाजनक है।

प्रांतीयता के समान और एक अलग समस्या जातीयता का भी ज़िक्र इस उपन्यास में किया है धर्म, प्रांत, जाति, लिंग आदि भेदों को मात करनेवाली आर्थिक विषमता

तो देश में सर्वत्र व्याप्त है। संपन्न लोगों के हाथ में ही हमेशा समाज के डोर होते हैं। वह जब चाहे खींचकर अपनी इच्छा के मुताबिक चलाता है, और आम जनता इस डोर के बंधन में पड़कर बिना सांस लिए मर जाते हैं। अनेक कारणों से व्यक्तिव्यक्ति के बीच अलगाव पैदा हो सकता है। उन कारणों को दूर करने की प्रेरणा इस उपन्यास के द्वारा रेणु ने किया है। इसके लिए लोक संस्कृति के विभिन्न तत्वों का समावेश इसमें लाने की कोशिश की है, जैसे मानवीयता के सहज संबन्धों को अधिक महत्व दिया गया है। रेणु ने बुराईयों पर विजय पाने के लिए मानवीयता को एक अच्छे औज़ार के रूप में प्रयोग किया है । औरतों की सप्लाई करने वाला क्रूर जयरामसिंह जब पवित्रा के मुख से 'मैं आपकी छोटी बहिन हूँ, आप भाई है' सुनकर पानी पानी हो जाता है। इसीप्रकार तालेवर गोढ़ी को 'काका' बुलाकर गोढ़ी के आँखों से आँसू भर आता है। तालेवर किसी भी कीमत में पवित्रा को पाना चाहता था। लेकिन अपने को पिता समान माननेवाली पवित्रा के प्रति उनका हुदय बदल जाता है।, पवित्रा कहती है "मैं अकेली नहीं, मैं निस्संग नहीं, मैं कहीं निर्जन में नहीं, मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ"[3] लोकसांस्कृतिमूलक समाज के गठन के लिए अपनी सत्ता को समाज में विलीन करने का संकल्प पवित्रा के जीवन एवं उपन्यास का उद्देश्य है।

प्रस्तुत उपन्यास में सौ से ज़्यादा पात्र है। इसमें सत्तर से ज़्यादा पात्र उपन्यास की वर्तमान गति से संबन्धित है। गोड्यिर गांव की आंचलिक संस्कृति वास्तव में इन पात्रों के स्वभाव वैशिष्ट्य से ही उभरकर सामने आते हैं। 'जुलूस' उपन्यास में रेणु ने गोड्यिर गांव को केन्द्र बनाकर प्रांतीय भेदभाव के सामने एक ऐसा प्रश्न चिह्न लगाया है, जो पाठक को सोचने के लिए बाध्य करते हैं, और राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ने के लिए प्रेरित भी करते हैं। नबी नगर बसाए गए शरणार्थियों की समस्त मानसिकता में, रहन-सहन में, जीवन मूल्यों में बंगाली संस्कृति का ही प्रभाव है। वे अपने को गोड्यिर गांव के समाज के साथ मिलाने के लिए थोड़ा हिचकते हैं, लेकिन पवित्रा दोनों समाज को एक बनाने के लिए सेतु का काम करती है।

इस उपन्यास को रेणु ने अत्यन्त भावुकता, आदर्शवाद और उद्देश्य के साथ लिखा है। इसमें गाँव के चिर परिचित परंपरागत और असामाजिक अपवाद निहित है। पवित्रा के द्वारा अनेक गुमराह चरित्रों को शक्ति देने, अनेक अंधविश्वासों को हटाने, अनेक रहस्यों का पर्दाफाश करने, देश के प्रति लगाव उत्पन्न करने और आधुनिकता का समावेश करने का उपक्रम करता है। जुलूस उपन्यास की सार्थकता यही है कि इसमें बिखरे हुए जीवन दर्शन, देश-भक्ति, सामाजिकता, जातीय विषमता, आदि को खुले मन से त्यागकर मानव और देश के प्रति एक लगन पैदा करने का सफल प्रयत्न मिलता है।

रेणु का व्यक्ति-लेखक रूप अपनी रचनाओं में पूरी तरह छिपा रहता है, रचनाओं के समापन और निष्कर्ष तक में रेणु की विचारधारा मुखर नहीं होती। वे जीवन के उसके पूरे खुलेपन के साथ हमारे आगे प्रस्तुत कर देते हैं। यह बात उनकी कला को महान बनाती है, और उस कला का सुन्दर संयोजन प्रस्तुत उपन्यास 'जुलूस' में भी हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थसूची:

1. साक्षात्कार 12-जून-अगस्त 79 लेख कविता और आंचलिकता पृ.सं. 96
2. डॉ.नगीना जैन - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास पृ.सं.1
3. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस - पृ.सं 102

सह आचार्या, हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज
एरणाकुलम - 682011

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर **मूल : मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम**

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

कैलास निकटस्थ खड़े देखने पर ऐसा नहीं लगा कि हम सत्रह हज़ार से भी ज्यादा फीट ऊँचाई पर ही खडे हैं। जांबियांग पर्वत की जगह जगह फूलदानी रखी हुई-सी हिम गिरे पडे है। भीमाकार आक टूटकर फँसे हुए से पत्थर बिखरे पड़े हैं। उनको सामान्य पत्थर का रूप नहीं। भक्तिपूर्वक देखने पर ऊँ, त्रिशूल, शिवलिंग, बैल के मुखभाग आदि रूप नज़र आते हैं। ऐसा भी माना जा सकता है कि मानो शिवरुद्राक्ष गिर कर बिखर गया हो। यह जानना अवश्यक है कि कैलास परिक्रमा के दौरान नज़र आते सारे पत्थर शिवलिंग है। ऐसा माना जाता है कि कैलास या मानसरोवर से संग्रहीत पत्थर के घरों में रखने से आगामी पीढ़ियों को ऐश्वर्य मिलता है।

जांबियाङ् पर्वत के बाद कैलास का निचला भाग है। वहाँ से सिंधु नदी का उत्भव होता है। कैलास के पूर्व से ब्रह्मपुत्र एवं दक्षिण से कर्णाली एवं पश्चिम से सतलज का उद्‌भव होता है। उन भागों में न जा सकता है न ही उन्हें देख सकता है।

दर्चन से ही बालगोपाल की इच्छा थी कि जांबियाङ् चढ़कर कैलास दर्शन करना। संघ के सदस्यों में से अधिकतर उसके अनुकूल थे। लेकिन यात्रा के बीच में हुई भारी वर्षा ने सबको थका दिया। तंबू के बाहर निकलना असंभव जानकर ज़्यादातर लोग ओढ़े हुए सो रहे हैं। सबकी स्थिति ऐसी लगती है कि मानो गहर देखभाल विभाग में पड़े हों। डारजी के निदेशानुसार पास रखी ज़रूरी दवाई अधिकतर ने खा ली थी। अब मौसम खुला हुआ प्रतीत होने पर भी जांबियाङ् पर्वत चढ़कर वापस आने तक यही स्थिति रहेगी, कोई इसपर यकीन नहीं कर सकता। इतने थके हारे होने पर वह इच्छा त्यागना ही उचित है। बालगोपाल के इस निदेश से सभी सहमत हो गए।

जांबियाङ् पर्वत के कंधे से कंधे मिलाकर खड़ा है कैलास। ऊपरी भाग ऐसा लगता है कि मानो मक्खन लगाया हुआ जैसे अंजन मूर्ति हो। तराशकर चिकना किया हुआ निचला भाग काला मक्खन होने का संदेह होता है। उतनी चिकनाई है। बाएँ भाग में हनुमान मूर्ति के सदृश दिखता रूप। उनके जहाँ तहाँ सफ़ेद हिम नज़र आ रहे हैं। देखने पर शुचींद्रम मंदिर के मक्खन परत हनुमान की मूर्ति का स्मरण आया। शुचींद्रम मंदिर की चोटी के दूसरे प्रतिरूप के समान नीलाकाश के नीचे कैलास आलोकित हो खड़ा है। शुचींद्रनाथ और कैलासनाथ भगवान के दो भाव ही हैं न।

शिवपुराण और हालास्यमाहात्म्य में वर्णित अनेक पवित्र दृश्य कैलास में आते जाते नज़र आए।

कैलासशृंग मेघपंखों से सटे खड़ा है। मेघसमूह होमकुण्डों से उड़ती धूप के समान पल प्रतिपल रूप बदलता जा रहा है। समतल-सा समुद्रीतट में सूर्य का इंद्रजाल हम नहीं देख पाते हैं। केवल उदय एवं अस्त में ही हम लोग सूरज को देख पाते हैं। प्रभात-प्रदोष संध्यावेला में सूर्य मंदिर खुलता है। आँखों के भीतर भक्ति दीप जलाकर करोड़ों लोग सूर्य की आरती उतारते हैं।

सूर्य के समान ही कैलास को भी ज़्यादा देर तक देखते न रह सकते। आँखें भर आती हैं। शिवभक्त रावण लंका में ले जाकर कैलास को अपना बनाना चाहा। उसे रस्से से बाँधकर खींचने की कोशिश भी की। वह भक्ति के चरम में महसूस तीव्रेच्छा हो सकती है। ऐतिह्य में दर्ज उन रस्से-चिह्नों को कैलास में देखने का व्यर्थ परिश्रम किया। शताधिक अर्धचंद्रकलाएँ सीने पर लगाकर कैलास खड़ा है। कुछ भाग तो ऐसा लग रहा था कि मानो शिवलोक की ओर खुले दरवाज़े और खिड़कियाँ जैसे हैं। ऊपरी भाग की सहज स्थिति एवं आर्द्रता निम्न भाग को नहीं है। ऐसा लग रहा था कि मानो पुष्प भरे एक महावृक्ष का निचला हिस्सा भूमि के नीचे धंस गया हो।

देखते ही देखते ऐसा लग रहा था कि मानो कैलासनाथ शैलांकण में नृत्य कर रहे हैं। पतंजली महर्षी एवं मित्र व्याघ्रपाद ने समान आनंगनृत्य के दर्शन ही किए होंगे। बाएँ पाँव में खड़े होकर अनुग्रह देते हुए दूसरा पाँव ऊपर करके शरण प्रदान करते, हाथ में शूल एवं वर प्रदान करते, हाथ में सर्पपाश के साथ थे आनंद नृत्य। दाएँ के चारों हाथों में डमरु, बाण, खड्ग, परशु इत्यादि थे। बाएँ भाग के चारों हाथों में अग्नि, धनु, खेड, दण्ड इत्यादि थे। ऐसे हाथों में विभिन्न प्रकार के आयुध रखे हुए हैं। जटाजूट में गंगा एवं वक्री चाँद। साथ में तृनेत्र। सर्वाभरणविभूषित शरीर। शरच्चंद्र किरणों के समान दीप्तमान शरीर। पार्वती की ओर दृष्टि करते नृत्य। इसे नृत्य को देखकर मन भरने के बाद ही पतंजली ऋषि ने विख्यात पतंजली स्तोत्र की रचना की थी। यह सुनकर धन्य हुए शिव ने पतंजली को एक बात याद दिला दी। विश्व में सर्वश्रेष्ठ है ब्रह्मा, उनसे श्रेष्ठ है महाविष्णु और उनसे भी श्रेष्ठ है सदाशिव और उनसे भी श्रेष्ठ है बिंदु। बिंदु से बढ़कर नाद होता है और नाद से बढ़कर श्रेष्ठ है पराशक्ति। पराशक्ति से श्रेष्ठ है परमशिव। परमानंद तांडव नौ शक्तियों युक्त होता है। इसलिए तांडवमूर्ति से बढ़कर श्रेष्ठ कोई मूर्ति नहीं है।

कैलासनाथ की नृत्यगति देखकर भर आया पतंजली ऋषि का मन स्तोत्र के रूप में झलक बहा। बिना पलकें हिलाकर कितने ही समय कैलास को ताक रहा है। एक भी पंक्ति नहीं आ रही है। क्या कहूँ एक शब्द भी बाहर निकल नहीं रहा है। प्रकृति के संपूर्ण महाकाव्य को एक बार पलटकर देखने के बिना कोई अनपढ़ क्या कर सकता है। अक्षय संपत्ति के सामने बिना ज़ेब या थैलावाला कोई बनिया क्या ले सकता है? असहाय स्थिति एवं आनंदसांत्रता में तडपते मन से दो मोती आँखों से निकले। उन्हें मैंने कैलास के उत्तरी आँगन में कोई देखे बिना समर्पित किया।

हमें लिए बिना चल आए क्या?

(क्रमशः)

नारी मनोविज्ञान की अंतर्धाराओं में लज्जा सर्ग

डॉ.सौम्या.सी.एस.

कविता मनुष्य के रागात्मक संबन्धों और स्थितियों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। उनके उभय जीवन परिदृश्य में सांस्कृतिक-सामाजिक भावबोध के उपकरण के रूप में कविता हमेशा सहचरी रही है। समय और समाज के साथ उसकी संसक्ति ने हर सदी में कविता की बहुआयामिता और बहुधर्मिता का पर्चम लहराया है।

हिन्दी के आधुनिक कवियों में प्रसाद, भारती, नरेश मेहता, मुक्तिबोध, नागार्जुन, अज्ञेय आदि ऐसी कोटी के कवि हैं जिन्होंने हमारे मूल्यगत विश्वासों और विचारों का प्रयोग करते हुए अपनी रचनाओं को प्रकाशित किया। यदि इन विचारों की पृष्ठभूमि से पाठक परिचित नहीं हो पाए तो निश्चयतः उसकी आस्वादन तथा समीक्षा धारा में शिथिलता आ जाएगी। जयशंकर प्रसाद की कामायनी इसी प्रकार की विशिष्ट रचना है। कामायनी के रूप में कवि ने कितनी ही विचित्र एवं विभिन्न बातों का ताना-बाना बुनकर एक ऐसा गौरव ग्रंथ तैयार किया है जिसमें एक ओर तो मानव सृष्टि का पूर्ण इतिहास अंकित किया गया है और बताया गया है कि किस तरह देव-सृष्टि के विध्वंस के उपरान्त श्रद्धा और मनु के संयोग से इस आधुनिक मानव-सृष्टि का विकास हुआ। दूसरी ओर इसमें मानवता के विकास का सर्वांगीण इतिहास भी अंकित किया गया है तथा बताया गया है कि किस प्रकार आरंभिक जंगली मानव गुफा से निकलकर पशु-पालन खेती आदि की ओर अग्रसर हुआ, कैसे उसके दिमाग में समाज व्यवस्था एवं राष्ट्र निर्माण की इच्छा जागृत हुई। कामायनी में एक ओर कवि ने काव्य के दृश्य पट पर मानव-मनोवृत्तियाँ और मनोभावों के क्रमिक विकास का इतिहास अंकित किया। 'रजत नात राय' ने अपनी किताब (Exploring Emotional History, Pg. 17) में मनोभावों तथा साहित्य के अन्तर्संबन्धों की विशद चर्चा करते हुए कहा है "Emotion is the realm of heart. Human emotions are permanent but they are shaped by social and emotional processes. Thus emotions Change over from time and culture. Articulate emotions therefore have a history. This history leaves a clear track in the literature of the given society."

प्रसाद ने कामायनी में यह समझाने का प्रयास किया है कि मानव के मस्तिष्क में सर्वप्रथम 'चिन्ता' नामक मनोभाव का उदय और उसके पश्चात् किस तरह क्रमशः आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, ईर्ष्या, निर्वेद आदि मनोविकार उत्पन्न होते चले गए जिनसे छुटकारा पाने के लिए कैसे वह फिर 'आनन्द' नामक समरस अवस्था की खोज में अग्रसर हुआ :

"समरस थे जड़ या चेतन,/सुंदर साकार बना था,/चेतनता एक विलसती/आनंद अखंड घना था"

दूसरी ओर कवि ने 'कामायनी' में भारतीय संस्कृति के सत् और असत् दोनों पक्षों का निरूपण करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि मानव के विकास के लिए दोनों पक्षों की नितान्त आवश्यकता है; परन्तु दोनों में समरसता का होना अनिवार्य है अन्यथा सत् की प्रबलता होने से मानव निष्क्रिय और असत् की प्रबलता होने से दुष्कर्मों का वक्ता बन जाएगा। कामायनी के पंद्रह सर्गों में कवि ने मानव सारी की चिरंतन समस्याओं को प्रकाशित किया है। उनका संदेश है कि आज मानव राशि की तमाम समस्याओं का कारण यह है कि वह जीवन की क्षणिकता तथा पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं वैयक्तिक विषमताओं का शिकार बना है। यदि मानव अपने जीवन की कर्मण्यता के पथ पर अग्रसर करे तो वह

भी मनु की भाति अखंड आनंद का पात्र बनेगा। इसीलिए कामायनी का पहला सर्ग 'चिन्ता' है और अंतिम आनन्द। काव्य में प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अनुष्ठान भी अप्रतिम प्रतीत होता है कि किस तरह एक साधक जब साधना में लीन होता है और संसार की स्थिति से अवगत होने लगता है तथा जगत और आत्मा की वास्तविकता से परिचित होकर 'समरसता' (mental equilibrium) को पाता है। कामायनी का प्रारम्भ जल-प्लावन से होता है, वह भारतीय प्राचीन ग्रंथों तथा पुराणों में भी उपलब्ध है। ऋग्वेद, महाभारत, श्रीमद भागवत, मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण, पद्म पुराण, वायु पुराण आदि। साथ ही ग्रीक, पालस्तीन, बाबीलॉनिया, बर्मा, चीन, Australia की कुछ कृतियाँ भी कुछ फेर बदल के साथ इस घटना का ब्योरा देती हैं। बाईबल में भी इस विराट जल-प्लावन का उल्लेख है जहाँ मनु की भाँति Hazrat Noah अपने परिवार और पशु-पक्षियों समेत बच निकलता है :

"And Noah builded an altar upon the
Lord, and took of every clean beast
and of every clean foul and offered
burnt offerings on the altar."(Bible Genesis, 8:20)

'लज्जा' कामायनी का छठा सर्ग है। लज्जा को साहित्य शास्त्र में 'ब्रीड़ा' संचारी भाव कहते हैं जिसमें स्त्रियों के अन्तर्गत पुरुष को देखने, प्रतिज्ञा भंग होने, पराजय होने, अनुचित कार्य करने में सिसक, संकोच, अधोमुख आदि व्यापार दृष्टिगत है। "Embarrassment' नामक अपनी किताब में Rowland Miller कहते है "If all these non-verbal behaviours are knit into a 5 second sequence, you get a fairly dramatic tableau." लज्जा को नारी का आभूषण माना जाता है। इसी मनोवैज्ञानिक तंतु के आधार पर कवि ने 'लज्जा' का वर्णन किया है। पूरे सर्ग में कवि ने सलज्ज श्रद्धा का मनमोहक चित्रण किया है। लज्जा नारी की एक ऐसी अंतरंग भावना है जिसके रहते युवती की ऐसी दशा होती है कि वह छूने से इतराती है, देखने में हिचकती है और उसकी पलकें ऊपर नहीं उठती, तथा प्रेमातुर वार्तालाप में वह सकुचाती है। Jon Ester अपनी विख्यात पुस्तक "Alchemies of the Mind' में इस नारी के अंतरंग मनोवृत्तियों की विवेचना करते हुए लिखते है "Psychological mechanisms are frequently occuring and easily recognizable casual patterns that are triggered under generally unknown conditions with indeterminate consequences. They allow us to explain, but not to predict." (Pg. 1)

कामायनी - भूमिका

चिन्ता - देवताओं के निर्बाध विलास के कारण प्रलय ही चुका है। समपूर्ण देव सृष्टि नष्ट हो चुकी है। केवल मनु शेष। मनु देवों के अतीत वैभव, प्रलय की विभीषिका तथा जीवन की नश्वरता का ध्यान करके चिन्ता में लीन है :

आशा - प्रभात नई आशा लेकर आती है। प्रकृति धीरे-धीरे मुस्कराने लगती है। चिन्ताग्रस्त मनु में भी आशा का संचार होता है। वह स्वस्थ मन से एक पर्वतीय गुफा में अपना निवास बनाता है तथा पवित्र यज्ञ करता है।

श्रद्धा - काम गोत्रजा श्रद्धा वहाँ उस निर्जन प्रदेश में आती है तथा मनु को पाती है। मनु का सौंदर्य उसे आकर्षित करता है तथा उसका सौंदर्य मनु को। अलग की छाया में विपन्न मनु को श्रद्धा जीवन की सार्थकता का पाठ देती है तथा कर्म में लीन होने की प्रेरणा देती है।

काम-श्रद्धा के आगमन से मनु के एकाकीपन की विरसता समाप्त होती है। जीवन के प्रति नवीन आकर्षण का उदय होता है तथा अनजाने ही हृदय में काम का स्फुरण होता है। प्रकृति का रूप उसे और भी दीप्त करता है।

वासना - श्रद्धा और मनु निकट आते हैं और एक दूसरे के प्रति अत्यधिक आकर्षित होकर समर्पण करते हैं और वासना उदीप्त होती है।

वासना आने पर नारी में लज्जा का आना स्वाभाविक है। श्रद्धा के हृदय में भी लज्जा का भाव जगता है। उसका नारीत्व पूर्णतः उभर आता है। इस प्रत्येक सर्ग में लज्जा और श्रद्धा की बातचीत के माध्यम से नारीत्व की कामना को व्यक्त किया है। मनु के साथ विवाह सूत्र में बँधने के बाद, श्रद्धा के हृदय में कई तरल अभिलाषाओं का संचार होने लगता है। उसे अपने पति के छूने के मनोगत दृश्य पर झिझक सी होती है। वह आँखें चुराकर अपने प्रियतम को देखती है तथा उसकी स्वाभाविक खिलखिलाहट स्मित बनकर रह जाती है। श्रद्धा उद्विग्न होकर अपनी आंतरिक लज्जा भावना से पूछती है कि उसकी अस्मिता में यह कैसा रहस्यमय विकार आ रहा है। तुरन्त ही उत्तर में एक मूर्तिमान 'लज्जा' प्रकट होते हैं। यह रति देवी है काम देव की पत्नी और लज्जा का प्रतीक। लज्जा की यह छाया प्रतिमा श्रद्धा को समझाती है कि नारी अनुराग की प्रतिमा होती है। लज्जा और श्रद्धा का संवाद नारीत्व की विराट काया को उदभासित करती है।

'लज्जा' - एक व्याख्यायित अध्ययन

'लज्जा' सर्ग की आरंभिक पंक्तियों में हम मनु के प्रणय निवेदन से अत्यधिक लज्जित नारी रूप 'श्रद्धा' को पाते हैं। उसके शरीर की दशा बदली हुई तथा स्वच्छंद वार्तालाप करती श्रद्धा में विचित्र परिवर्तन दिखाए जाते हैं। स्वयं श्रद्धा अपने परिवर्तन से आशंकित और चकित है

"कोमल किसलय के अंचल में नहीं कलिका ज्यों छिपती सी,/ गोधूली के धूमिल पर में दीपक के स्वर दिपती सी,/ मंजुर स्वपनों की विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यों/ वेसे ही माया में लिपटी अधरों पर उँगली धरे हुए,/माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए/नीरव निशीथ में लतिक सी तम कौन आ रही हो बढती?"

श्रद्धा चिन्ताकुल है कि न जाने क्यों आज उसे अपना यौवन अनेक अभिलाषाओं से भरा हुआ दिखता है। मनु के छूने से आज उसे हिचक महसूस होती है, उसे देखने पर अनायास ही सकी आँखें झुक जाती हैं जो कुछ वह कहना चाहती है कह नहीं पाती। श्रद्धा व्याकुल है क्योंकि कुछ उसके हृदय को परवश करके उसकी सारी स्वतंत्रता छीन रहा है : "छूने में हिचक देखने में पलकें आँखों पर झुकती है/कलख परिहास भरी गूँजे अधरों तक सहसा रुकती है/संकेत कर रही रोमाली, चुपचाप नरजती खड़ी रही,/भाषा बन भौहों की काली रेखा सी भ्रम में पड़ी रही/तुम कौन! हृदय की परवशता? सारी स्वतंत्रता छीन रही।"

संध्या के समय बैठी श्रद्धा सोच में मग्न थी कि संध्या की लालिमा में एक छाया-मूर्ति का उसे आभास हुआ जो और कोई नहीं श्रद्धा के हृदय में तिलमिलाती 'लज्जा' का मूर्तिमान आकार जो था श्रद्धा की आकांक्षा और आशंकाओं का उत्तर देते हुए कहती है कि वह युवतियों के जीवन की ऐसी पकड़ है, जो प्रेम पथ पर अग्रसर होती कुमारियों को भलि-भाँति सोच विचार करने का उपदेश देती है : "इतना न चमत्कृत हो बाले! अपने मन का उपकार करो,/मैं एक पकड़ हूँ जो कहती ठहरो कुछ सीच-विचार करो"

कवि ने 'लज्जा' को पकड़ विशेषित करते हुए उसकी सुकोमल भावना की नया मानदण्ड दिया है।

लज्जा आगे कहती है कि देव-सृष्टि में वह काम देव की पत्नी रति देवी थी लेकिन देव जाति के विनाश के बाद वह केवल भावना के आवरण में भटकती है। वह रति देवी की ही प्रतिमूर्ति है। उसका प्रत्येक रूप विन्यास नहीं है। वह युवतियों के सुकोमल कपोलों पर लालिमा के रूप में स्थित है "Blushing shows the spiritual and moral side of human nature more clearly than anyother facial display. Inability to blush has

always been considered the accompaniment of shylessness" (Embarassment; Fouland Miller, Pg. 145) वह उनकी आँखों का काजल है, हलकी सी मसलन है जो कानों की लाली बनकर प्रकट होती है :

"मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,/मैं शालीनता सिखाती हूँ/ मतवाली सुंदरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूँ/लाली बन सरल कपोलों में

आँखों में अंजन सी लगती/चंचल किशोर सुंदरता की मैं करती रहती रखवाली/मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की"

लज्जा की बातें सुनकर श्रद्धा और भी उत्सुक हो जाती है और पुनश्चः वह लज्जा से सवालों का सिलसिला शुरू करती है। श्रद्धा महसूस करती है कि वह इतनी दुर्बल हो गई है, उसके अंग अत्यन्त तरल हो चुके हैं जिनके कारण उसे सभी से हार माननी पड़ रही है। उसका मन अत्यन्त ढीला हो रहा है, आँखों में आँसू भरे रहते है और हृदय में ममता छाई रहती है : "यह आज समझ तो पाई हूँ/ मैं दुर्बलता में नारी हूँ/अवयव की सुंदर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ"

यहाँ एक पल के लिए लग सकता है कि प्रसाद का नारीत्व के प्रति रवैया सामंती है। महान मनोवैज्ञानिक Freud ने कहा था "Biology is destiny' Freud के प्रति भी यह आरोप प्रबल है कि औरतों के प्रति उनका नज़रिया पितृसत्तात्मक है

श्रद्धा कहती है कि आज वह एक दुर्बल नारी है, मनु की अपेक्षा मुझमें कम बल है। मेरे अंग कोमल है तथा इसीलिए उसे अपने आप को पुरुष जाति के सामने हार माननी पड़ती है क्योंकि उसके हृदय में पुरुष समान कठोरता नहीं कोमलता, दया, करुणा, ममता है। प्रसाद ने अपने नर-नारी विचार अजात शत्रु में भलि-भाँति प्रस्तुत किए है "कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है। जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए है। इसलिए प्रकृति ने उसे इतना सुंदर और मनमोहक आवरण दिया है।" (पृ. 124) श्रद्धा लज्जा से अपनी आशंका जताती है कि 'लज्जा' से वशीभूत होने के बाद जब-जब वह दूसरों की परीक्षा लेने का प्रयत्न करती है तब-तब उसकी ही परीक्षा हो जाती है और वह अपने आप को असमर्थ पाती है। श्रद्धा यह जानना चाहती है कि क्या उसे अपना सर्वस्व मनु को समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि उसे इस समर्पण में केवल बलिदान की भावना छलकती है : "मैं जभी तोलने का करती उपचार/ स्वयं तुल जाती हूँ/भुज लता फँसा कर नर-तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ/इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है/मैं दे दूँ और फिर कुछ न लूँ, इतना ही सरल झलकता है।"

श्रद्धा की आकांक्षा से उत्तेजित होकर लज्जा अपना विवरण देती है। वास्तव में लज्जा और श्रद्धा के इस वार्तालाप प्रसंग के माध्यम से प्रसाद ने भारतीय नारी के सनातन कर्तव्यों को रेखांकित किया है। जैसे लज्जा का श्रद्धा को समझाना कि उसे मनु का विश्वास करना होगा और अपना त्याग और तपस्या से विषमताओं को दूर करते हुए जीवन को समतल बनाना होगा।

"क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प अश्रु जल से अपने/तुम दान कर चुनी पहले ही जीवन के सोने से सपने/नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में/पीयूष स्त्रोत सी बहा करों जीवन के सुंदर समतल में।"

कवि ने यहाँ नारी की केवलता की ओर इशारा किया है जो समीक्षा की माँग कर सकता है।

लज्जा सर्ग का अंतिम प्रकरण लज्जा की वाणी से ही संपन्न होता है।

"देवों की विजय, दानवें की हारों का होता युद्ध रहा/संघर्ष सदा उर-अंतर में जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा/आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा/तुमको अपनी स्मित रेखा से यह संधिपत्र लिखना होगा।"

लज्जा कहती है विश्व में अनादिकाल से ही दो परस्पर पूरक प्रवृत्तियों का द्वंद्व चलता रहा है - दैवी-दानवी, सत्-असत् इन संघर्षों में सदा सत् वृत्तियाँ ही विजयी होती हैं। यह संघर्ष जायज़ भी है क्योंकि तभी ब्रह्मांड का संतुलन बना रहेगा। गौरतलब है कि यह द्वंद्व बाह्य जगत में ही नहीं अन्तर्जगत में भी चलता रहता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी के मन में सत्-असत् दोनों परस्पर पूरक वृत्तियों का संघर्ष विद्यमान है। यही कारण है कि श्रद्धा के मन में भी द्वन्द्व के बादल छाए है। लज्जा श्रद्धा को यह कहकर आश्वस्त करती है कि उसे अब अपने भीगे अंचल पर रखकर अपनी मनोकामनाएँ मनु को सोंपनी होंगी और आँसुओं की छिपाकर मुसकान की हल्की रेखा चेहरे पर सजाकर आजीवन प्रेम संबन्ध बनाए रखने की प्रतिज्ञा लेनी होगी। इस काव्यांश में आँसू से भीगा अंचल तथा संधिपत्र जैसे शब्द प्रयोग आपत्तिजनक है क्योंकि वह नारी की प्रत्यक्षतः दासता की मोहर देती है। यद्यपि यहाँ कवि का ध्येय प्राचीन भारतीय संस्कृति को प्रकाशित करना है फिर भी आज के माहौल में इसका अध्ययन नारीवादी दावों को देने लायक है।

लज्जा सर्ग का कथानक विशेषकर श्रद्धा और लज्जा का वार्तालाप है जिसमें श्रद्धा के मनोव्यापारों का निरूपण करते हुए नारी के अन्तरंग तथा बहिरंग से कवि एक ह्रस्व साक्षात्कार करवाते हैं। आत्म-गौरव से संपन्न नारी रूप श्रद्धा लज्जा विवश होकर अपने आप में घटनेवाले परिवर्तन का जवाब चाहती है। पूर्व सर्गों में कवि ने श्रद्धा की जो विराट काया खींची थी वह यहाँ 'लज्जा' वश धूमिल पड़ती है। लेकिन कवि का उद्योग यह कदापि नहीं है कि 'लज्जा' का निषेधात्मक चित्रण करे, उनका लक्ष्य सिर्फ यह रहा होगा कि श्रद्धा की विराट छवि पर 'लज्जा' का आवरण छड़ाकर नारीत्व के एक अभिन्न पहलु को दिखाए।

लज्जा एक अमूर्त संकल्पना से मूर्त आकार बनना और तत्पश्चात् आशंकित श्रद्धा के सवालों का जवाब देना कवि की मनोवैज्ञानिक पकड़ के जीवन्त प्रतीक है। प्रतिछाया (alter ego) के रूप में लज्जा का उद्भव मनोविज्ञान शाखा की परिपाटी (alter ego) का प्रतिपादन करती है। विज्ञान स्त्रोतों के अनुसार 'प्रतिछाया' का चलन उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में "Schizophremia' के साथ हुई। Alter ego या प्रतिछाया वास्तव में 2nd self है यह हमारा प्रतिद्वंद्वी नहीं हमसफर है। यद्यपि alter ego मनोवैज्ञानिक संपदा है साहित्य, फिल्मों में इसका प्रयोग बड़-चढ़कर हुआ है। Alter ego वास्तव में श्रद्धा को यह आभास है कि वह अपनी सहज प्रकृति से दूर ही रही है, यह उसके लिए दुखद है। उसका मन भावनाओं के चक्रव्यूह में धँसा है लेकिन बुद्धि निज स्थिति से अवगत है।

John Elster कहते हैं "Internal emotions are stronger than external emotions" लज्जा सर्ग में श्रद्धा के परिवर्तित अवतार को देखकर Elster का यह कथन सार्थक निकलता है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि Ralph Waldo Emerson ने नारीत्व पर लिखा है "What is behind us and/What is before us are/ tiny matter componed to what lies within us"

'लज्जा' के आइने में नारीत्व की काया को यह कथन रेखांकित करता है। मुक्तिबोध ने 'कामायनी' को 'जीवन की पुनर्रचना' कहा था, जो 100 प्रतिशत, सत्य है तथा लज्जा सर्ग नारीत्व की सबलता और अबलता के तराजु में तोलकर उसकी काया को नए प्रतिमान प्रदान करने का साहस करता है। यहाँ हम Dryden की उक्ति का आश्रय ले सकते हैं "The readers are the jury the writer only puts the case."

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
श्री नारायण कॉलेज, आलत्तूर,
पालक्काड

संजीव के उपन्यासों में वर्णित जनजाति समाज का यथार्थ

डॉ निर्देश चौधरी

हिंदी के समकालीन कथाकारों में संजीव एक बहुचर्चित और बहुप्रशांसित नाम है। संजीव उपेक्षित, अभिशप्त व शोषित लोगों की संवेदनाओं को वाणी देने वाले एक संवेदनशील रचनाकार है। उनका साहित्य विभिन्न संभावनाओं से भरा हुआ है। संजीव के अंदर का कथाकार अत्यंत परिश्रमी एवं जनवादी चेतना का पक्षधर है। संजीव की दृष्टि असीमित है, उनकी प्रत्येक रचना के पीछे व्यापक अध्ययन एवं शोध दृष्टि झलकती है। वह समाज के शोषित, दलित, उपेक्षित, ग्रामीण, आंचलिक और मेहनतकश वर्ग की पीड़ा को बहुत संजीदगी से अपने उपन्यासों में रेखांकित करते हैं। शोध और श्रम के आधार पर उनका लेखन हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाता है।

संजीव ने बिहार एवं झारखंड राज्य के आदिवासी जीवन को सैलानी दृष्टि से न देखकर गहरी रागात्मकता के साथ वर्णित किया है। वर्तमान में विकास के नाम पर जनजातियों का होने वाला विनाश साहूकारों पूंजीपति और दबंगों द्वारा किए जाने वाले शोषण को संजीव ने बहुत गहराई के साथ चित्रित किया है। जनजातियों के दमन और शोषण के कारण पनपने वाले अपराध को भी संजीव ने यथार्थ रूप में उजागर करने का प्रयास किया है। संजीव के लेखन में जहाँ एक और लोक जीवन की धड़कन एवं बुनावट में देता है तो वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टिगत होता है साहित्यकार अपने समाज की परिस्थितियों एवं यथार्थ से प्रेरित होकर ही साहित्य सृजन करता है। साहित्यकार जो भी लिखता है उस पर कहीं न कहीं उसके जीवन में घटित घटनाओं एवं तत्कालीन वातावरण का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

जनजातियाँ एक ऐसा समूह हैं, जो एक सामान्य भू-भाग में निवास करता है तथा अपनी विशिष्ट बोली बोलता है। कुछ जनजातियाँ शहरी संस्कृति के संपर्क में आने से शहरों में जाकर मजदूरी करके अपनी जीविका चलाती हैं। अधिकांश जनजातियाँ जंगलों में, पहाड़ों पर एवं दुर्गम क्षेत्रों में निवास करती हैं बहुत लंबे समय तक सभ्यता और संस्कृति से दूर रहने के कारण अनपढ़, अज्ञानी, अंधविश्वासी एवं अभावग्रस्त हैं। गरीबी, अशिक्षा एवं मूलभूत संसाधनों के अभाव के कारण इनका जीवन बीमारियों एवं कुपोषण से ग्रस्त है। जनजातियाँ एक-दूसरे से अनेक अर्थों में भिन्न होती है। सामाजिक संस्कृति एवं जनसंख्या के आधार पर उनकी विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं। भारत में हजारों वर्षों से जंगलों और पहाड़ों में रह रही जनजातियों ने खुले मैदान तथा सभ्यता के केंद्र में बसे लोगों से अधिक संपर्क स्थापित किये बिना ही अपने अस्तित्व को बनाये रखा है। विश्व के अनेक देशों में आज भी ऐसी जनजातियाँ पाई जाती हैं, जो वर्तमान समय में भी आदिम रूप से रह रही हैं। भारत के अधिकांश राज्यों में जनजातियाँ निवास कर रही हैं। सभ्यता से दूर होने के कारण आज भी इनकी जीवन-शैली अत्यंत प्राचीन है? जनजातीय लोग जंगली फूलों, शिकार कर, पशु-पालन, जड़ी बूटियों को बेचकर तथा अस्थिर खेती करके अपनी जीविका चलाती हैं। अधिकांश जनजातियों की वर्तमान स्थिति आर्थिक अभावों के कारण दयनीय है।

आदिवासी समाज अपने हक के लिए विविध आंदोलनों द्वारा संघर्ष करता हुआ दृष्टिगत होता है, जैसे- नागा आंदोलन, संथाल आंदोलन, मुंडा आंदोलन, कोल आंदोलन आदि द्वारा सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक परिवर्तन लाने को प्रयासरत है। संजीव के उपन्यासों विशेष रूप से संकल्पना जनजाति के समाज तथा सूक्ष्मता के साथ चित्रित है। 'धार' उपन्यास में संथाल जनजाति का जीवन चित्रित है। संथाल खेती-बाड़ी करने वाली व्यवस्थित जनजाति है। यह भारत की सबसे बड़ी जनजातियों में से एक है। संथाल जनजाति बिहार, झारखंड, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में बड़े विस्तृत क्षेत्र में निवास करती है।

आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों द्वारा कारखाने लगाने से वहाँ पीने का पानी तक दूषित हो चुका है। तेजाब का कारखाना लगने से खेतीबाड़ी, कुआं तथा तालाब खराब हो गए हैं संथालों के खेत बंजर बन गये हैं "क्या करें कहाँ से ले आए पानी कोई तालाब समय तो तेजाब है स्टेशन पर सिपाही पानी लेने देते नहीं।"[1]

'धार' उपन्यास में संजीव ने प्राकृतिक संपदा से भरपूर किंतु सभ्यता की दृष्टि से अति पिछड़े और बाहरी व्यक्तियों द्वारा शोषित जनजातियों की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका मैना कहती है कि - "हमको याद आता, जब हम बच्चा था, खेती से चार- छः महीना का काम चल जाता, आज एक दिन का भी नहीं! खेत - खेतार, पेड़, रुख, कुआँ, तालाब हम और हमारा बाल बच्चे तक आज तेजाब में गल रआ रहा है भूख में जल रआ है, पहले हम चोरी का चीज है नहीं जानता था, भीख कब्भी नई माँगा, चुगली - दलाली कब्भी नई किया, इज्जत कब्भी नई बेचा, आज हम सब करता, आदत पड़ गया है, बल्कि कहे तो इसके बिना गुजारा नई! शरमा बाबू चाअता था कि हमको इज्जत मिले, आदमी की रए - इसका खातिर कहाँ-कहां दरखास नई दिया, मगर कोई सुनवाई नई सब मर गया हकीम- सरकार, भगवान-सब! आज ई ठो सोचने का बात है कि हम ऐसा - ई रएगा ।

जनजातीय लोग बाहरी लोगों के शोषण के कारण त्रस्त हैं। कड़ी मेहनत के बावजूद उन्हें अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ता है। उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य भी नहीं मिलता। उनके श्रम पर पूंजीपति, ठेकेदार, साहूकार, माफिया, दलाल और अधिकारी ही संपन्न होते हैं- "ठेकेदार अब भी ढोर-डागरों की तरह उन्हें काम कराने हांककर ले जाते हैं और चूसकर छोड़ देते हैं, माफिया अब भी उनसे चोरी से कोयला कटवाते हैं और पकड़े जाने पर सजा भी उन्हीं की होती है। बड़े जोतदार अभी खेती में उनसे अमानुषिक श्रम कराते हैं और जरा-जरा सी बात पर पीटते हैं।"[3]

साहित्य में यथार्थ का चित्रण सदैव से ही एक महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। आज भी साहित्य में यथार्थ का चित्रण एक ज्वलंत विषय है। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने तो उपन्यास को मानव जीवन का चित्रण कहा है। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य में यथार्थ का चित्रण करना साहित्यकार का दायित्व है। "साहित्यकार का काम केवल पाठक का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मादारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है? वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है। हममें सद्‌भावनाओं का संचार करता है। हमारी दृष्टि को फैलाता है।"[4] झारखंड खनिज संपदा से भरपूर राज्य है। यह राज्य आदिवासी लोगों का प्रमुख निवास स्थान भी है लेकिन यहाँ उद्योगपति आदिवासियों की जमीन पर नए-नए कारखाने शुरू करते हैं, जिनकी जमीन पर यह कारखाने शुरू होते हैं उन्हें पूरी तरह से बेदखल किया जा रहा है। लेखक भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा आदिवासियों के शोषण को देखकर कहता है कि - "यू नो, झारखंड खनिज संपदा का भंडार है। नए-नए उद्योग लगाए जा रहे हैं, नयी दुनिया की पग ध्वनि! अगर सरकार ईमानदारी से इनका हक दे दे तो एक ही छलांग में कई मंजिले अपने आप तय हो जाती हैं पर अन्याय देखो, आदिवासियों को, जिनकी जमीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है- इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसरों के पेट में।"[5] जनजातियों का निश्चित काम-काज न होने से वे गरीबी और दयनीय अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी विभागों में भ्रष्ट अधिकारी, आदिवासियों का आर्थिक शोषण कर उन्हें और भी कंगाल बनाते हैं। सरकार द्वारा आदिवासी सुधार के लिए अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की गई हैं किंतु सरकारी योजनाओं की असफलता और आदिवासी समाज की अरण्यमय संस्कृति के कारण उनका समुचित विकास नहीं हो रहा है। लेखक आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के विषय में लिखते हैं कि "आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें हैं

अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता। अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है। हंडिया या दारू ये पिएंगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएंगे। पढ़ाई-लिखाई से दूर रहेंगे। दारू की लत और जरूरतमंदों को सूद पर पैसे और अनाज देकर इन आदिवासियों की जमीन कुछ चालाक लोगों ने हथिया ली।"[6]

जनजातियाँ अधिकांशतः कबीलाई पद्धति से रहती हैं। जंगलों, वनों और पहाड़ों में रहने के कारण दूषित पानी, चिकित्सा का अभाव और खान-पान की सुविधाओं से वंचित रहने से इन्हें अनेक बीमारियों से जूझना पड़ता है। सरकार की कोई भी योजना इनके पास नहीं पहुँचती है। लेखक जनजातियों की बस्ती का वर्णन इस प्रकार करता है "ज्यादा हैरत थी उनकी काया को देखकर कुपोषण और रोग की मारी छायाएँ और उन पर चिकनी फटी-फटी उजली आँखें । अगर रात में कोई देख ले तो निश्चय ही डर जाये। कई लड़के लड़कियाँ और बुढ़े लकवे के मारे- से दिख रहे थे और उन पर उनके स्याह चेहरों की भयावनी उजली आंखें।"[7] जनजातीय समाज की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। यह समाज आर्थिक अभाव से अत्यंत दयनीय अवस्था में रोजी-रोटी व अपनी जीविका के लिए निरंतर जूझता हुआ दृष्टिगत होता है। संथालों के पास कोई काम न होने के कारण में कूड़ा बीनने का काम करते हैं "जान की परवाह किसी को नहीं। एक दूसरे को धकियाते-कुचलते कूड़े से वे लोहा- पीतल बटोर रहे थे। लड़के अपनी कमीज और लड़कियां अपने आंचल और लहंगे में नन्हा गट्टर बीने हुए टुकड़े लेकर आ रही थी तौलने वाले के पास।"[8] आर्थिक तंगी और रोजी-रोजगार न होने के कारण आदिवासी लोग पैसा लेकर अपनी लड़की से ज्यादा उम्र के पुरुष को ब्याह देते हैं। चौदह पंद्रह साल की लड़की का विवाह उससे दोगुनी उम्र के आदमी से भी करने को तैयार हो जाते हैं।

आदिवासी लोग अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए धर्म परिवर्तन कर ईसाई भी बन गए हैं लेकिन कोई लाभ नहीं मिल पाया "साहेब (ईसाई) बन सको तो उ लोग मदद करते हैं, हमरा गांव में मोडल तो बन गया लेकिन कोई खास फैदा नहीं। जात भाई से भी गया।"[9] आदिवासी लोग नितांत निर्धन और अशिक्षित हैं, इसी बात का लाभ उठाकर ईसाइयों ने भी अपने पैर पसार दिए और धन व रोजी-रोजगार का लालच देकर इन भोले-भाले लोगों का धर्म परिवर्तन कराते रहते हैं। ये अपने जंगलों व वनों में रहकर ही अपनी जीविका के लिए कुछ करना चाहते हैं क्योंकि यह क्षेत्र खनिज संपदा में अनेक प्रकार की संभावनाओं से भरा पूरा क्षेत्र है।

आदिवासी समाज अनेक कारणों से पिछड़ा हुआ है, वह चाहे नशे की लत हो, अशिक्षा हो, या रोजगार की कमी हो। इसके अतिरिक्त इनकी अनदेखी भी मुख्य कारण है। इनके पिछड़ेपन का । इनकी अनदेखी तथा इनके साथ होने वाले भेद-भाव के विषय में संजीव लिखते हैं कि "एक जनजाति है चुहाड या चुआर! गाली देने में उसका प्रयोग किया जाता है, अरे चुहाड कहाड कहीं का! ब्रिटिश जुल्म के खिलाफ पहले लड़ाई उसी जाति के लोगों ने लड़ी थी। 1767 में इसके बाद भी पहाड़िया प्रतिरोध 1772 में और 1855 में महान संथाल हुल तिलका माँझी भी पहाड़िया ही थे, जबकि हमारे सिपाही विद्रोह के बड़े बागी कुंवर सिंह, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, फैजाबाद के मौलवी साहब, उनके नब्बे साल बाद आते हैं, लेकिन हमारे इतिहास में वही कुंवर सिंह, वही लक्ष्मीबाई, वही मंगल पांडे, यह न सिर्फ आदिवासियों के शौर्य को इग्नोर करता है बल्कि के जानना भी नहीं चाहता। पहाड़िया क्रिमिनल रेस के रूप में दर्ज़ है जबकि वह थी मार्शल रेस।"[10] जनजातीय समाज हमेशा से अपने जंगलों में अपनी जमीन से लगाव करता रहा है और उसके लिए हमेशा संघर्ष करने के लिए तैयार रहता है। अंग्रेजों के विरुद्ध भी ये लोग सबसे पहले लड़े थे। इनको मजबूर करके जल जंगल जमीन से बेदखल करने का षडयंत्र लगातार किया जाता रहा है जिससे इनका शोषण किया जा सके "पहाड़ियों को नीचे उतारने में असफल अंग्रेजों ने सन्तालों को लाकर बसाना शुरू किया। नीचे सन्ताल उपर पहाड़िया।

सन्तालों ने जंगल काटकर पत्थर हटा -हटाकर खेत बनाये। फसल उगाई।राजस्व बढ़ा तो आ गए महाजन- साहूकार उसके खिलाफ हुआ था हूल।"[11]

पहाड़िया आदिवासी समाज की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है।इनके पास कोई रोजगार या व्यवसाय नहीं है। मृत्युदर अधिक होने के कारण इस जनजाति की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। सरकार की चिंता है कि इनकी आबादी बढायी जाये। पहाड़िया जनजाति की मृत्युदर कम करने तथा उन्हें बाहरी देश-दुनिया से जोड़ने के लिए 'इनके लिए अच्छा स्कूल चाहिए था। अच्छी खुराक चाहिए थी। अच्छा अस्पताल चाहिए था, सड़कें चाहिए थी जो उन्हें शेष दुनिया से जोड़ें ताकि ये घुल- मिल सकें और तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अपनी बेहतरी के आप ढूँढ सकें। सरकार थी, मिशनरियों थी, जन-कल्याण की संस्थाएँ थी, यूनिसेफ थी, मगर लगता था सब हाथी के दांत है। 'अनेक आदिवासी कल्याण संस्थाओं, सरकारी योजनाओं तथा आदिवासियों के हित का दिखावा करने वाले व्यक्त्यिों के बारे में लेखक कहता है कि संस्कृति संरक्षण के नाम पर यह एक मनुष्य के प्रति कैसा अमानवीय व्यवहार है? जो विद्वान ऐसा कर रहे हैं, वे अतीत के आईने में खुद का चेहरा क्यों नहीं देखते? खुद भी तो कभी खोह- कन्दराओं में रहा करते थे, वही बने रहते। आज की पाँच तारा संस्कृति में आने की क्या जरूरत थी भैय खुद खाओं मेवे और वे जब कोदो, सावां, पेड़ की जड़ कन्द खायें तो तारीफ करो की कन्द बहुत न्यूट्रीशन होता है। तुम रहो ए.सी. में और उनकी बात चले तो गदगद भाव से आहें भरो-अहा, वे प्रकृति के सान्निध्य में मजे ले रहे हैं, हम तो बासी हवा में सड़ने को अभिशप्त हैं। बात करें पहाड़िया की तो आप कहो- आप क्या जाने पहाड़ पर फ्रेश ऑक्सीजन और पॉल्यूशन फ्री जोन है। उनकी मजबूरियों अभाव पिछ्लेपन को उनकी गरिमा सिद्ध करने में तुम्हें शर्म नहीं आती।"[12] आदिवासी समाज जमीन और जंगल से बहुत लगाव करता है। वह परेशान करने वाले बाहरी लोगों से नफरत करता है। बाहरी लोग यहाँ आकर आदिवासियों का शोषण करने लगे हैं, वस्तुतः अब आदिवासी समाज अत्याचारों के विरोध में खड़ा होता दिखाई देता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संजीव समकालीन जनवादी धारा के एक बेहद संवेदनशील कथाकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में आदिवासी, दलित तथा उपेक्षित लोगों को केंद्र में रखा है। संजीव ने कुल्टी स्थित कारखाने में कार्य करते हुए पश्चिम बंगाल के मजदूरों का संघर्षमय जीवन झारखंड के आदिवासियों का जीवन कोयला खदानों में कार्यरत मजदूरों का जीवन तथा उच्च वर्ग द्वारा शोषण आदि को नजदीक से देखा है इसलिए उनके उपन्यासों में विषय की दृष्टि से विविधता है सारांशतः संजीव का लेखन जनजातीय समाज के विविध रूपों को और उनके परिवेश को यथार्थ के धरातल पर उजागर करता है। वर्तमान में निरन्तर बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण अपनी जमीन और वन संपदा से विस्थापित होते हुए तथा विकास के नाम विनाश पैदा करने वाले अफसरों, पुलिस, पूंजीपतियों महाजनों और दलालों के चुंगल में फंसे जनजातीय समाज का यथार्थ अंकन भी संजीव के उपन्यासों में हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1.धार, संजीव, पृष्ठ संख्या- 55
2. वही, पृष्ठ संख्या- 58
3.वही, पृष्ठ संख्या- 129
4.प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ संख्या- 58
5. पांव तले की दूब, संजीव, पृष्ठ संख्या- 14
6.वही, पृष्ठ संख्या- 11
7.वही, पृष्ठ संख्या - 54-55
8.धार, संजीव, पृष्ठ संख्या- 42
9. वही, पृष्ठ संख्या- 43
10. आकाश चंपा, संजीव, पृष्ठ संख्या-231
11.वही, पृष्ठ संख्या-238
12.वही, पृष्ठ संख्या-258

सहायक आचार्या
राजकीय महाविद्यालय जेवर

'फायर' : जलती इच्छाओं की कथा

नीतू.यू.वी

फायर सिनेमा इंडो -कैनेडियन निर्देशक दीपा मेहता की एलिमेंट ट्रायलॉजी (Element trilogy) की पहली फिल्म है। सन् 1996 में बनी यह फिल्म वह फिल्म थी जिसमें समलैंगिकता को शायद पहली बार बॉलीवुड की मेनस्ट्रीम फिल्म में दिखाया गया था। दीपा मेहता की इस फिल्म में लेस्बियन रिश्ते दिखाए गए थे और मुख्य भूमिका में थी शबाना आजमी और नंदिता दास । 'फायर' की कहानी दो महिलाओं के बीच के संबंधों को दिखाती है और उनके साथ होने वाली सामाजिक प्रतिबंधों और असमानताओं पर प्रकाश डालती है।

फिल्म की केंद्रीय कथा राधा और सीता से संबंधित है, रिश्ते में वे देवरानी और जेठानी हैं । फिल्म की शुरुआती सीन में ताजमहल को दिखाया जाता हैं,जहाँ सीता और जतिन हनीमून के लिए आते है। उनकी शादी होने के बाद कुछ ही दिन हुए होते हैं। जतिन इस शादी से बिल्कुल खुश नहीं है वह जूली से प्रेम करता है जिससे वह शादी भी करना चाहता था। लेकिन परिवार ने मना किया क्योंकि जूली एक विदेशी औरत थी वह चीन से आई हुई थी और जूली भी खुद शादी करनी नहीं चाहती थी क्योंकि वह इस तरह के एक संयुक्त परिवार के बंधन में बांधे रहना नहीं चाहती थी। जतिन ने सीता की कभी परवाह ही नहीं की। वह शादी के बाद भी जूली से मिलने जाता है। अपने पति की इस स्वभाव से हतप्रथ होने के कारण, सीता हमेशा दुखी रहती है। वही राधा अपने पति अशोक से शादी करके साल बहुत हो चुके थे , पर उनका कोई बच्चा नहीं हो पाया और टैस्ट करने पर पता चलता है कि राधा माँ नहीं बन सकती। इस बात को जानने के बाद से अशोक एक गुरु के पास शरण लेता है वहीं से वह जान वा समझ लेता है कि संभोग एक स्त्री के साथ सिर्फ बच्चा पैदा करने के लिए ही होना है अन्यथा वह मनुष्य के अंदर की आसक्ति मात्र है, उसे रोकना चाहिए तभी हम ब्रह्मत्व प्राप्त कर सकता है। अपने आप को साबित करने के लिए अशोक रोज रात को राधा से अनुरोध करता है कि वह उसके साथ लेटे ताकि वह खुद को टेस्ट कर सके और यह साबित कर सके कि वह अपनी आसक्ति को काबू कर सकता है।

अपने-अपने पतियों द्वारा की जाने वाली अवहेलना, इन दो पत्नियों को तोड़ देती हैं। राधा तो सालों से इसे अपने कर्तव्य समझकर जी लेती है पर सीता सह नही पाती । राधा और सीता अपने दुखों को आपस में बांट कर राहत पाती हैं । ऐसे धीरे-धीरे राधा और सीता का रिश्ता देवरानी जेठानी से आगे बढ़ता है। अब बातों से आगे वे एक दूसरे से शारीरिक रूप से राहत पाने लगते हैं । घर के नौकर मुंडू द्वारा अशोक को इनके इन रिश्तों के बारे में पता चलता है और वह राधा और सीता को सेक्स करते हुए देख लेता है। बात पता चलने पर सीता राधा से कहती है कि वे अब यहाँ से भाग जाते हैं । तब राधा सीता से भाग जाने के लिए कहती है क्योंकि वह अशोक से बात करना चाहती है लेकिन अशोक गुस्से में है और सिर्फ यह माँगता है कि राधा माफी माँगे और उसके पैर पकड़े पर राधा कहती है कि वह कुछ गलत नहीं किया तो माफी क्यों माँगे। बातों -बातों में राधा की साड़ी में आग लग जाती है । राधा अशोक से मदद माँगती है लेकिन अशोक राधा को जलने छोड़ कर वहाँ से चला जाता है। राधा आग से बच जाती है और वहाँ से भाग कर सीता के पास जाती है जो एक मंदिर में राधा की प्रतीक्षा में बैठी थी। इस सीन के साथ फिल्म खत्म हो

जाती है। फिल्म बहुत सारी समस्याओं को हमारे सामने पेश करती है, इसमें उल्लेखनीय कुछ समस्याएँ हैं जिसमें पहला है:

परिवार के नाम पर फँसा 'व्यक्ति' : भारत में परिवार संस्था का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से इस संस्था के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। ज्ञात होता है कि पूर्व वैदिक काल में संयुक्तपरिवार की प्रथा थी जिसमें माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि के साथ ही साथ अन्य सम्बन्धी भी निवास करते थे ।परिवार का प्रधान आधार विवाह होता है । इसका प्रारम्भ एक प्रजनक अथवा जैविक संस्था के रूप में हुआ जो बाद में मनुष्य के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई बन गया । सामाजिक महत्व की दृष्टि से कोई भी संगठन परिवार का अतिक्रमण नहीं कर सकता है । और इस महत्वपूर्ण संस्था के अंतर्गत रहने वाले हर व्यक्ति का अपना कर्तव्य होता है और उनको उसका पालन भी करना होता है।

इस फिल्म की केंद्रीय कथा एक संयुक्त परिवार में फँसी दो औरतों के संबंध पर है। इस केंद्रीय कथा के तहत निर्देशक दीपा मेहता ने एक संयुक्त परिवार में फँसे व्यक्ति की हर समस्याओं को हमारे सामने पेश किया। जैसे:

बड़े बेटे का फर्ज : एक पुरुष प्रधान समाज के संयुक्त परिवार का स्वामी हमेशा एक पुरुष होता है। यह स्वामित्व पहले पिता के पास होता है। पिता की मृत्यु के बाद उनके बड़े बेटे को यह विरासत में मिल जाती है। और यहीं से परिवार का देखभाल करना, आवश्यकता अनुसार कार्यों को तै करना, क्या होना है और क्या नहीं होना चाहिए इसका निर्धारण करना यह सब बड़े बेटे का कर्तव्य बन जाता है। इस फिल्म में बड़े बेटे की भूमिका अशोक निभा रहा है। अशोक खुद यह मान लेता है कि परंपरा के अनुसार अपने परिवार का देखभाल करना उसका कर्तव्य है और इसी के अनुसार वह कमाता है ,परिवार का देखभाल भी करता है साथ ही अपने घर के सदस्य कैसे जिया जाता है इसका भी निर्धारण वह खुद ही करता है। अशोक के अनुसार पत्नी की भूमिका होती है कि वह पति के साथ मिलकर परिवार को संभाले और पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ पति की सेवा करें।

परिवार के नाम में 'कुछ भी': परिवार के लिए कोई भी व्यक्तिकुछ भी कर सकता है चाहे उसे अपनी जान भी क्यों ना गवानी पड़े। इस फिल्म में इस 'कुछ भी' का संबंध जतिन से संबंधित है, जो अशोक का छोटा भाई है। जतिन जुली नाम की एक विदेशी औरत से प्यार करता है लेकिन जूली से शादी करने के लिए अशोक मना करता है और जतिन को सीता से शादी करने के लिए मजबूर कर देता है। अशोक जतिन को शादी करने के लिए मजबूर करता है ताकि उनका एक बच्चा हो सके और घर का एक वारिस हो, क्योंकि अशोक और राधा को बच्चा नहीं हो सकता और जतिन भी इसके लिए राजी हो जाता है, क्योंकि परिवार के लिए वह कुछ भी कर सकता है

पत्नी का फर्ज : सिनेमा में पूर्णतया यही दिखाया गया है कि एक पत्नी का फर्ज होता है कि वह अपने पति के साथ रहे, उसकी सेवा करें और उसके परिवार को संभालें जो की मनुस्मृति में भी व्यक्तहै-

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।/
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किं चिदप्रियम्?

यानि 'पति अनाचारी हो या परस्त्री में अनुरक्तहो विद्यादि गुणों से रहित हो तथापि साध्वी स्त्री को सर्वदा देवता मानकर अपने पति की सेवा करनी चाहिए।' फिल्म में एक दृश्य होती है जहाँ अशोक मेडिटेशन कर रहा है और राधा सोई हुई होती है तभी अशोक की माँ घंटी बजाती है

और तुरंत अशोक सोई हुई राधा को जगाती है और कहता है कि माँ पुकार रही है। इस दृश्य से यही व्यक्तहोता है कि अशोक चाहे तो वह खुद जा सकता था, लेकिन नहीं, उसे सोई हुई राधा को जगाना ही था क्योंकि यह राधा का कर्तव्य है। फिल्म में ऐसे कई दृश्य है जो हमारे मन में सवाल उठाते है, क्या वाकई स्त्री की कर्तव्य पति सेवा है।करवा चौथ की कहानी से संबंधित एक दृश्य फिल्म में है जो हमें यह सोचने को और मजबूर कर देता है- करवा चौथ से संबंधित कहानी के बारे में बताते हुए राधा सीता से कहती है कि यह व्रत हम हमारे पति के लंबी उम्र के लिए लेते है। हमें हमेशा अपने पति के प्रति वफादारी एवं समर्पण की भावना कायम रखना होता है। इसलिए ही तो मनुस्मृति में कहा है कि "स्त्रियों के लिए विवाह विधा ही वैदिक संस्कार है ऐसे माना गया है पति की सेवा ही उनका गुरु कुल निवास और घर का धंधा ही उनका साध्य प्रातः होम है।"[3] फायर फिल्म के माध्यम से निर्देशक दीपा मेहता ने हमारे मन में यह सवाल प्रस्तुत किया कि क्या वाकई स्त्री का कर्तव्य पति सेवा तक सीमित है? दूसरी मुख्य समस्या जो फिल्म में दिखाई गई है वह है

धार्मिक पाखंड : जब हरिशंकर परसाई ने कहा कि 'जादूगर और साधु। ये इस देश की जनता को कई शताब्दी तक प्रसन्न रखेंगे और ईश्वर के पास पहुँचा देंगे भारत-भाग्य विधाता हममें वह क्षमता दे कि हम तरह-तरह के जादूगर और साधु इस देश में लगातार बढ़ाते जाएँ।"[4] बहुत ही सही कहा क्योंकि फिल्म में जब अशोक को पता चलता है कि राधा कभी माँ नहीं बन सकती तब अशोक एक गुरु के पास जाता है और उनकी शरण में समर्पित हो जाता है और फिर उसके बाद हर महीने अपनी एक हिस्से के पैसे को वह हमेशा गुरु को देता है क्योंकि वह मान लेता है कि उसके कर्तव्य होता है कि गुरु सेवा करना। गुरु के वचन सुनकर ही अशोक के अंदर ब्रह्मत्व के प्रति चाह होने लगता है। वह अपनी हर समस्या का हल गुरु के वचन से ही प्राप्त करता है। अशोक का मिठाई का धंधा है वही वह सिनेमा कैसेट को भी भेजता है। सिनेमा कैसेट का धंधा जतिन संभालता है। अशोक को पता चलता है कि जतिन इन सिनेमा कैसेटो के साथ अश्लील फिल्म कैसेट भेज रहा है। तब वह जतिन को गुरु के पास ले जाता है और सलाह माँगता है। अशोक को अपने परिवार से भी ज्यादा भरोसा अपने गुरु पर है। इस फिल्म में व्यक्तअगली समस्या है स्त्री समलैंगिकताः ऑपोजिट सेक्स वालों की तरफ आकर्षित होने वालों को हेट्रोसेक्सुअल कहते हैं। इसी के उलट जब किसी पुरुष को पुरुष या किसी महिला को महिला से आकर्षण हो तो ऐसे लोगों को समलैंगिक कहा जाता है।

जब निर्देशक दीपा मेहता ने इस फिल्म को बनाया उन्होंने कभी भी इस फिल्म को एक समलैंगिक संबंध को दर्शाने वाले फिल्म के तहत नहीं बनाया था। लेकिन यह फिल्म आगे चलकर स्त्री समलैंगिकता को प्रस्तुत करने वाली पहली फिल्म बन गई थी। इस फिल्म में जो दो औरतों के बीच का संबंध दर्शाया गया है, वह एलजीबीटी समुदाय से संबंधित लैसबियन रिलेशनशिप् नहीं है। लेकिन यह फिल्म ने साधारण लोगों के बीच यह गलत धारणा फैलाई है कि जब शादीशुदा स्त्री को पुरुष द्वारा अवहेलित किया जाता है, तो वह पुरुष को छोड़ कर स्त्री पर आसक्त हो जाती है और वह लेस्बियन बन जाती है। इन गलत धारणाओं ने एलजीबीटी समुदाय पर पहले से रहे नफरत को और मजबूत किया है। यह बात सही है कि इस फिल्म के कारण लोगों के मन में लेस्बियनिज्म से संबंधित गलत धारणा जरूर जागृत हुई है, लेकिन निर्देशक दीपा मेहता ने कभी भी इस उद्देश्य से इस फिल्म नहीं बनाया था। इस फिल्म में सिर्फ दो औरतों के शारीरिक संबंध को व्यक्त किया गया है । फिल्म के एक सीन में सीता खुद राधा से कहती हैं कि 'हम इस रिश्ते को क्या नाम दें और किस

प्रकार इसे देखें।' इस संबंध को सिर्फ वूमेन इरॉटिक इच्छा के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

फिल्म स्त्री समलैंगिकता से संबंधित हो या दो स्त्रियों के शारीरिक संबंध के संबंधित हो, समाज के लिए यह मान्य नहीं है। समाज के नजरिए से यह गलत है। सुधा टुरी नाम की एक वकील ने इस फिल्म के खिलाफ आवाज़ उठाते हुआ कहा कि 'जो भी फायर नाम की इस फिल्म में दिखाया गया है वह हमारी संस्कृति के खिलाफ है यह अप्राकृतिक चीजें हैं जो हमारी धर्म और परंपरा कभी भी मानेंगे नहीं, इसलिए हम इसके खिलाफ है। 'दो व्यक्तियों के आपसी इच्छा का निर्धारण समाज कैसे कर सकता है? आज अगर यह सवाल पूछा जाए तो जवाब में जरूर कह सकते हैं कि इसका निर्धारण सिर्फ उस व्यक्ति पर केंद्रित होता है । लेकिन यह फिल्म उस दौर पर बनाई गई थी जब हम यह नहीं कह सकते थे उस समय आज की तरह इतनी खुली विचारधारा वाला समाज नहीं था। इस प्रकार कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि आज का समाज पूरी तरह से खुली विचारधारा वालों से भरा है, लेकिन हाल के कुछ सालों में बहुत बदलाव देखने को मिला है। इस प्रकार दीपा मेहता ने अपनी फिल्म के माध्यम से कुछ ज्वलंत समस्याओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया ।

'फायर' को एक साधारण मेंस्ट्रीम बॉलीवुड सिनेमा के तहत नहीं देखा जा सकता, बल्कि इसकी कॉन्टेक्स्ट कला(पैरेलल) सिनेमा जगत से मिलती जुलती है। पारंपरिक कला शैली को अपनाने के बावजूद भी फिल्म नवीनता के कुछ तत्वों का परिचय देती है। इसका सत उदाहरण है फिल्म की मुख्य कथा पात्रों के नाम 'राधा' और 'सीता' भारतीय परंपरा के सबसे आदर्श नारी माने जाने वाले दो देवियों के नाम है। लेकिन फिल्म में इन कथा पात्रों की भूमिका पारंपरिक आदर्श स्वरूप से कुछ हटकर है। परंपरा के अनुसार सीता देवी वह देवी है जो अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण की भावना रखते हुए सेवा करती है लेकिन हमारी फिल्म की सीता पारंपरिक आदर्श नारी सीता से कुछ हटकर है यहां सीता क्रांतिकारी है वह पारिवारिक बंधनों में बांधे रहना नहीं चाहती उसे अपनी पति द्वारा की जाने वाली अवहेलना से भी ज्यादा दुख इस बात की है कि वह एक संयुक्त परिवार की घरेलू नारी बन गई है। वही फिल्म में राधा अपने पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित एवं वफादार है, लेकिन हमारी परंपरा के अनुसार राधा देवी प्रेम के कारण कृष्ण से बांधे हुए होती हैं वह कृष्ण से बहुत प्यार करती है लेकिन यहाँ राधा अपने पति से अपने कर्तव्य के कारण जुड़ी हुई होती है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि महत्ता भारतीय पारंपरिक सिनेमाई तत्वों का प्रयोग किया है। हालांकि वह उन्हें अपनी कहानी में नवीन परिणाम प्राप्त करने के लिए ही संशोधित करती है। ऐसे करते हुए, दीपा मेहता ने पारंपरिक रूप से एक स्त्री द्वारा संयुक्त परिवार में अनुभवित हर समस्याओं को, साथ ही परंपरा एवं परिवार के नाम पर हर व्यक्ति को होने वाली समस्याओं को भी हमारे सामने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति,अध्याय 5 श्लोक 154
2. स्त्री पुरुष संबंधों का रोमाँचकारी इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त,वाणी प्रकाशन 2005
3. वही
4. भारत को चाहिए जादूगर और साधु: हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचना, https://www. femina.in
5. फायर, दीपा मेहता ,1995
6. Fire by Deepa Mehta, Documentary Behind the scenes,9:12-9:23

शोधार्थी , हिंदी विभाग, CUSAT

निर्मल वर्मा की कहानियों में माँ का बदलता स्वरूप

जास्मिन मेरी.पी.जे.

हमारी जिंदगी में माँ का महत्वपूर्ण स्थान है। केवल मनुष्य के जीवन में ही नहीं बल्कि प्रकृति में भी मातृत्व की झलक देख सकता है। साहित्य में प्रकृति, नदी, पृथ्वी आदि को मातृत्व का प्रतीक माना गया है। भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान सर्वोपरि माना गया है। मातृत्व की सबसे बड़ी विशेषता है अपनी संतानों के प्रति असीम वात्सल्य । माँ ममता, स्नेह, वात्सल्य, पवित्रता, त्याग करुणा और समर्पण का मूर्तिमत स्वरूप है। "मनुष्य के जीवन में ही नहीं,प्रकृति भी मातृत्व का अनुभव किया गया है। अतः उर्वरता प्रदान करने वाली प्रकृति को,नदी को, मिट्टी को,हवा को,मातृत्व प्रदान किया गया है। सही है कि यह एक विराट कल्पना है।"[1] मातृत्व में प्राप्त महत्व को आज कई प्रकार के परिवर्तन आने लगे हैं। मातृत्व के मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं आया लेकिन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण उसके व्यवहारिक प्रतिरूप बदलते गए। यह बदलाव निर्मल वर्मा की कहानियों में देखने को मिलता है।

हिंदी कथा साहित्य के एक समर्थ लेखक है निर्मल वर्मा। उन्होंने आधुनिक हिंदी कहानी को अंतर्राष्ट्रीय साहित्य मंच तक प्रतिष्ठित किया। निर्मल वर्मा की कहानियों में प्रकृति, परिवेश, भावना एवं विचारों को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनके नारी पात्र विशेषकर माँ पात्र कर्तव्य भावना से परिपूर्ण होकर पति - बच्चे के साथ रहना नहीं चाहती। वे संबंधों की विखडन की स्थिति में घर से, पति से दूर अलग जीने लगती है। 'अंधेरे में', 'कुत्ते की मौत', 'पहाट पिता और प्रेमी', 'दो घर', 'बीच बहस में', 'एक दिन का मेहमान' आदी कहानियों में आधुनिक परिप्रेक्ष्य में माँ की बदलती भूमिका को निर्मल वर्मा चित्रित किया है।

निर्मल वर्मा के 'अंधेरे में' कहानी का प्रमुख पात्र है माँ पोनो। उसकी बच्ची बीमार है। पोने अपनी बच्ची की हर इच्छा पूरी करती है लेकिन इसका कारण यह है कि माँ अपनी बच्ची से छुटकारा पाना चाहती है। ताकि वह अपनी स्थितियों में गुम हो सके। निर्मल वर्मा ने इस कहानी के माध्यम से इच्छा के विरुद्ध विवाह के दुष्परिणाम एवं माँ का व्यक्तित्व टुकड़ों में बांध जाने की छटपटाहट को चित्रित किया है ।

"नहीं तुम भीतर नहीं जाओगी।/ 'छोडो ..... मेरा हाथ छोड़ दो।/'पोनो ....तुम भीतर नहीं जाओगी।
'कौन हो तुम मुझे रोकने वाले छिः शर्म नहीं आती
'पोनो .....वह सो रहा है ..... इस तरह मत चिल्लाओ'
'मैं खिलाऊँगी नहीं, मुझे भीतर जाने दो।
'नहीं इस वक्त नहीं।"[2]

पूरी कहानी त्रिकोणी प्रेम पर केंद्रित है। पोनो गहरे अवसाद में जीने वाली एक माँ है। वह माँ का दायित्व भली-भांति नहीं निभा सकती और पत्नि का दायित्व भी। अपनी बीमार बच्ची का देखभाल करते करते वह अपने अतीत की दुनिया में खो जाती है। पोनो गहरी निराशा और अंदरद्वंद्व में जीती एक माँ है, लेकिन वह अपनी निराशा एवं अंतर्द्वंद को छुपाना चाहती है। लेकिन इस प्रयास में भी वह सफल नहीं हो पाती। इस तरह पोनो एक असफल प्रेमिका , असफल पत्नी और असफल माँ बन जाती है।

इसी प्रकार उनकी 'कुत्ते की मौत' नामक कहानी का प्रत्येक पात्र एक दूसरे से उबे हुए हैं। वे एक दूसरे से नफरत करते हैं। कभी-कभी भाग जाने तथा आत्महत्या करने को भी सोचते हैं। इस कहानी का एक प्रमुख पात्र है माँ उनकी वेदना यह है कि उन्होंने वैवाहिक जिंदगी के आरंभ से ही अपने पति को स्वीकारा ही नहीं था - इसलिए शुरु आत का अजनबीपन आज तक बना रहा है। "छोटी उम्र का दुख। आँखों के आगे गर्मी का भरा भरा

सा आकाश फैलता जाता है। यह तो कुछ भी नहीं है, मुन्नी ..... देखो तो, कुछ भी नहीं । आगे चलकर जब उम्र बढ़ जाती है, तब ....कितनी मुद्दत बीत गई है, जब पहले -पहल घर छोड़ा था ..... एक अजनबी के संग, जो आज उनके बच्चों के पिता है ('वे' नीचे लेटे हैं,अब वे रात को 'उनके' कमरे में नहीं जाती .....वे उनके बच्चों के पिता है, यह वे जानती है, लेकिन पूरा विश्वास आज भी नहीं हो पाता।) लोग कहते थे, धीरे-धीरे पराई शहर, पराए घर में जी लग जाता है। लग जाता होगा ..... लेकिन वे तो लंबे अरसे तक गुसलखाने में घण्टों छिपी रहा करती थी। 'वे' दरवाजा खटखटाते थे, और वे बेहोश -सी पाइप की खुली धार के नीचे लेटी रहती थी .....।"[3] इस कहानी में पारिवारिक संबंधों की घुटन को संकेतात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है अपने ही घर में अजनबी के रूप में रहने के लिए विवश माँ की नियति को यहाँ निर्मल वर्मा ने दिखाया है।

निर्मल वर्मा की 'पहाड़' कहानी में एक ऐसी दंपति को दिखाते हैं जो पुराने दिनों की सुनहरी यादों में जीते हैं । इन यादों में पहाड़ ही एक खास जगह है। इस कहानी में बच्चे के आ जाने के बावजूद भी पति पत्नी के संबंध में कहीं कोई विरक्तिनहीं आती है। उनकी स्मृतियों में बच्चे के लिए कोई जगह नहीं है इस कहानी के माँ-बाप केवल अपने में केंद्रित है। उनका बच्चा उनके लिए बोझ सा लगता है कहानी की नारी पात्र माँ बन जाने के बाद भी अपने बच्चे की तरफ से लापरवाह है। "पति ने उसके कंधे पर हाथ रखा। वह सिहर - सी गई और उसने धीरे से उसका हाथ अलग कर दिया।

क्या बात है? - पति ने तनिक सशंकित स्वर में पूछा।

- मुझे लगता है, हमें इसे यहाँ नहीं लाना चाहिए था। - उसने बच्चे की ओर देखा और फिर सहसा उसकी आंखें अंधेरे के उस सुदूर धब्बे पर उड़ गई, जहाँ कुछ देर पहले पहाड़ थे और अब कुछ भी नहीं .....

- हमें इसे यहां नहीं लाना था - उसने कहा।[4]

आमतौर पर माँ अपने बच्चों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। लेकिन पहाड़ कहानी की माँ सिर्फ औरत है उनकी पूरी सोच स्त्री -पुरुष के प्यार के इर्द-गिर्द घूमती है। दंपति के संबंधों के मध्य बच्चा एक पहाड़ सा बन जाता है। वे एक अच्छे माँ-बाप नहीं कह सकते।

आधुनिक युग की माँ प्राचीन सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह करके नवीन मान्यताओं के प्रीति विद्रोह करके नवीन मान्यताओं को स्थापित करना चाहती है। वह स्वच्छंद प्रेम को ग्रहण करती हुई दूसरे का गर्भ अपने पेट में डाल कर गर्व महसूस करती है। 'पिता और प्रेमी' कहानी की नायिका अपने प्रेमी के बच्चे को जन्म देती है। एक दिन उसका प्रेमी उसे पूछता है कि इसका पिता कौन है ? तो नायिका बताती है कि उनमें से कोई भी उसका पिता नहीं है,जिन्हें वह जानता है।

'उसका संदेह वापस लौट आया - एक छोटी उम्मीद से साथ ...

'तुम्हारा है? उसने पूछा, जैसे उसके कोट या उसके पर्स के बारे में पूछ रहा हो ।

'तुम्हें शक है? लड़की ने उसकी और देखा।

'नहीं अब नहीं। उसने कहा।

'जब तुम यहाँ थे, तब यह नहीं था।"[5]

नायिका अपने प्रेमी का गर्भ पेट पर पालकर एक बच्चे को जन्म देती है और प्रेमी के पूछने पर उसे बता देती है कि तू इसके पिता नहीं कोई और है। वह एक कुँवारी माता है और अपने बच्चे के पिता से कहती है कि यह तेरा बच्चा नहीं है। यहाँ वह एक समर्पित माँ है और माँ होना उसके लिए सबसे बड़ी खुशी है। यहां निर्मल वर्मा एक ऐसे समाज का चित्रण किया है कि पिता के बिना बच्चे की माँ होना दुखद घटना नहीं, सुखद अनुभूति है।

उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है 'पिछली गर्मियों में'। इसमें टूटते पारिवारिक संबंधों को चित्रित किया है। केंद्रीय पात्र निंदी 3 वर्षों बाद यूरोप से अपने घर वापस आया है। बहन नीता तथा भान्जी उससे मिलने आई है। निंदी की पहली प्रेमिका अरुणा से वह नहीं मिलना चाहता।

निंदी वियना में एक दूसरी लड़की के साथ बिना शादी किए रहने लगता है। भारत लौटने पर माँ और दोस्त महीप के बार-बार अरुणा से मिलने की बात कहने पर निंदी कुछ नहीं कह पाता।

"तुम अरुणा से मिले थे?' महीप ने पूछा।

'नहीं वहाँ जाना नहीं हो सका' उसने कहा ।

महीप ने बियर के गिलास से उसकी और देखा । 'पहले तुम अक्सर उसके घर जाते थे।"[6]

कहानी में नई और पुरानी सोच का संघर्ष देखने को मिलता है। माँ का चरित्र इस कहानी में बड़ा डरा -सहमा -सा लगता है। बेटे को शराब पीते देखकर भी माँ कुछ नहीं कहती। बेटे को माँ का कुछ न कहना बुरा लगता है। माँ निन्दी को देखना चाहती है,बातें करना चाहती है लेकिन सामना करने से डरती है। वह अंधेरे में खड़ी रहती है और सामने होने पर लज्जित हो जाती है। तीन सालों के अंतराल ने माँ और बेटे के बीच काफी लंबी रेखा खींच दी है। जिसे पार करना उनके बस में नहीं है।

कहानी 'दो घर' एक ऐसी नारी की अभिव्यक्ति करती है जिसका अपना घर है, परिवार है लेकिन वह उन सब के बीच होने के बावजूद अजनबी है। कहानी की नायिका अंग्रेज है और उसने एक ऐसे भारतीय पुरुष से विवाह किया है जिसकी पत्नी और बच्चे भारत में पहले से ही है। कहानी 'दो घर' पुरुष और स्त्री के अंतर्विरोधों को दिखाती है। अंग्रेज महिला चाहती है कि उसका पति अपने देश लौट जाए और अपने परिवार के साथ रहे। वह यहाँ अकेले अपने बच्चे के साथ रह सकती है। अंग्रेज महिला नर्स है स्वभाव से सहिष्णु भी ।

'दोनों दिन -भर आपस में ही खेलते हैं ...' उन्होंने कहा, 'मैंने इनकी टीचर से शिकायत की थी, लेकिन यहाँ सुनता कौन है?

'शिकायत कैसी? मैंने पूछा ।

"दूसरे बच्चे इन्हें चिढ़ाते हैं कहते हैं। कहते हैं, ये जिप्सी। वे हंसने लगी।

'यहाँ जरा सा भी रंग काला हो, तो उन्हें सब जिप्सी दिखाई देते हैं। कोई इनसे बोलता नहीं। कोई इनके साथ खेलता नहीं।"[7]

उन्हें अपने बच्चों की चिंता है, जो काले होने के कारण अपने ही देश में उपेक्षित के समान जीना पड़ता है। एक ममतामय एवं स्वावलंबी माँ का चित्रण यहाँ निर्मल वर्मा ने किया है।

इस प्रकार निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिक युग के माँ के बदलते स्वरूप को यथार्थ पर एक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी नारी पात्र कहानियों के बीच अपने आप को अकेला और अजनबी पाती हैं। उनकी कहानियों में चित्रित माँ का संसार अति संवेदनशील है। वे स्वतंत्र होकर जीना चाहती हैं और जीती भी है। वे खामोशी का सफर करते रहते हैं। ऐसा लगता है कि शब्दों से ज्यादा उनकी खामोशी ही बोलती है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. डॉ षिबी सी - हिंदी साहित्य और माँ, माया प्रकाशन, कानपुर ,2018, पृ. सं -9
2. निर्मल वर्मा - मेरी प्रिय कहानियाँ , राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट , दिल्ली ,1995 पृ सं 79
3. निर्मल वर्म - जलती झाड़ी , राजकमल प्रकाशन , नयी दिल्ली ,1979, पृ. सं -61
4. वही पृ. सं -71
5. निर्मल वर्मा -पिछली गर्मियों में - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,1979 पृ . सं -26
6. वही पृ . सं -
7. निर्मल वर्मा - बीच बहस में (चार लंबी कहानियाँ)- संभावना प्रकाशन, हापुड .(उ0 . प्र0) 1976,पृ सं -70,71

सहायक आचार्य एवं शोधार्थी, हिंदी विभाग
निर्मला कॉलेज मूवाट्टुपुष़ा
एरणाकुलम, केरल - 686 661

मध्यकालीन राजस्थान में सामाजिक जीवन

सलिल श्रीवास्तव

शोध सारांश-

प्रारंभिक मध्यकाल में राजस्थान की सामाजिक संरचना भारत के अन्य क्षेत्रों से कुछ भिन्न थी। राजस्थान के नैतिक बंधनों के बाद समाज को स्पष्ट रूप से विभिन्न राज्यों में जातियों में विभाजित किया गया था। इसके अलावा, इस तरह की संरचना से एक ऐसी आर्थिक संरचना का उदय हुआ जो परिष्कृत होने के साथ-साथ समाज-उन्मुख भी थी। यह काल वास्तव में मध्यकालीन से औपनिवेशिक युग में संक्रमण का प्रतीक था। प्रस्तुत शोध पत्र का विषय मध्यकालीन राजस्थान में सामजिक जीवन हैृ जिसमें राजस्थान के सामजिक जीवन में घटित घट्नाओं के साथ उनके समस्याओं का पता लगाने एवं उनका समाधान करने हेतु ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है। इस्लाम का आगमन राजस्थान के इतिहास में एक मील का पत्थर के समान साबित हुआ। राजनीतिक परिस्थितियों ने रीति-रिवाजों, राजस्थान के साहित्य और परंपराओं से संबंधित विभिन्न विचारों को बदल दिया। राजपूतों ने तुर्कों और मुगलों के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी लेकिन युद्ध क्षेत्र में उनमें एकता की कमी थी और वे पारंपरिक युद्ध प्रणाली का पालन भी करते थे। यह शायद उनकी असफलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण था, भले ही उनकी संख्या अधिक थी। दूसरी ओर देखा जाये तो एक ओर जहां विभिन्न अवगुणों ने राजस्थान के लोगों के सामाजिक जीवन पर कब्जा कर लिया था, वहीं दूसरी ओर भक्ति आंदोलन के संतों द्वारा उत्पन्न विचार धर्म की छिपी हुई विचारधारा को उजागर करने में सहायक थे।

बीज शब्द- मध्यकालीन, राजस्थान, सामजिक, इस्लाम, राजपूत इत्यादि ।

भूमिका : राजस्थान भारत का एक गौरवशाली प्रदेश है, जिसके कण-कण में स्वधर्म व स्वदेश के लिए मर मिटनें वाले वीर शहीदों का रक्त मिश्रित है। भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए इस प्रदेश का अतुलनीय योगदान रहा है। राजस्थान के आठवीं शती से समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव पड़ा। इसके सामाजिक समानता के सिद्धांत ने परंपरागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप हिंदू समाज में रूढ़िवादिता की वृद्धि हुई। इस काल के लेखक और विचारकों ने इस स्थिति की तुलना कलियुग से की है। समाज में मंडली बनाए रखने के उद्देश्य से विवाह, खान-पान और विशेषता के नियम बेहद मामूली कर दिए गए। अंतर्जातीय विवाहों का प्रचलन बंद हो गया और सामाजिक संबन्ध पूर्णतया तय हो गया। अंतर्जातीय खान-पान पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। ब्राह्मणों के लिए अन्य वर्णों के यहाँ भोजन करना (आपात्काल को ठीक करना) बंद कर दिया गया। क्षेमेन्द्र के विवरण से पता चलता है कि यह भावना प्राच्य, दक्षिणात्य और भगवान लोगों में अधिक थी। ये लोग अपनी संबन्धियों के अतिरिक्तकिसी अन्य व्यक्तिका स्पर्श तक नहीं करते थे। अल्बरूनीता ने लिखा है कि दो ब्राह्मण जब भोजन करते थे तो वे अपने बीच में एक कपड़े का टुकड़ा रखते थे या रुढ़ियाँ खींचते थे। ब्राह्मणों के कुछ वर्ण अधिक यहूदी रूढ़िवादी थे जो ब्राह्मण, जैन आदि वैदिकेतर धर्मों को स्वीकार करते थे उन्हें भी वे कुजात तत्व कहते थे। कलिवर्जी के सिद्धांत को रेकार्ड विदेश यात्रा के लिए प्रस्तुत किया गया और विदेशियों से संपर्क स्थापित करने पर रोक लगा दी गई। विभिन्न संस्कृतियों और उपजातियों की उत्पत्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था अत्यंत जटिल हो गई। राजस्थान का इतिहास और साहित्य अदम्य साहस, मातृभूमि के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करनें की भावना से ओत-प्रोत, त्याग, बलिदान और शौर्यपूर्ण गाथाओं का इतिहास रहा है, लेकिन मुगलों की केन्द्रीय सत्ता के पतनोन्मुख हो जानें के बाद राजस्थान की देशी रियासतें पारस्परिक कलह और संघर्षों में संलिप्त होकर बहुत ही निर्बल हो गई।

जाति प्रथा : पूर्वमध्यकाल के समान मध्यकालीन राजस्थान का समाज जाति प्रथा पर आधारित था। जाति प्रथा का आधार वैदिककालीन वर्ण-व्यवस्था मानी जाती थी। इसलिए मध्ययुग के प्रतिभाशाली राजपूत राजाओं ने जिनमें मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (1628-1652 ई) और

मारवाड़ के अजीतसिंह राठौड़ (1679-1724 ई.)1 का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, ने अपने समय में वर्ण व्यवस्था को पुनर्गठित करने का प्रयत्न किया था।

सम्भवतः यह प्रयास इसलिए करने पड़े थे कि कालान्तर में राजस्थान का समाज जाति और उप-जातियों में विभाजित हो गया था जिनका आधार व्यवसाय नहीं होकर जन्म अथवा वंश होता था, लेकिन समकालीन स्रोतों में ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि द्विज वर्ण के लोग रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार एक-दूसरे का व्यवसाय अपना लेते थे। उदाहरणार्थ ब्राह्मण कृषि करते थे और व्यापार, वाणिज्य में वैश्यों के अतिरिक्त कोई दूसरी जाति का व्यक्ति भी भागीदार बन सकता था। इसकी पृष्ठभूमि में अर्थाभाव हो सकता है।

राज्य और समाज में ब्राह्मणों का आदर था। उन्हें कृषि का व्यवसाय अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही अपनाना पड़ता था। समय के साथ-साथ राजा-महाराजाओं ने कररहित भूमि, दक्षिणा में ब्राह्मणों को प्रदान करके वैदिककालीन रूढ़ियों को समयानुकूल परिवर्तित कर दिया था। जब एक बार यह परिपाटी प्रारंभ हो गई तो कतिपय योग्य और साहसी ब्राह्मणों ने सेना और प्रशासनिक सेवा में नौकरी करके वैदिककालीन परम्परा का परित्याग कर दिया था। इसमें संदेह नहीं कि रूढ़िवादी ब्राह्मण अपने साथियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। लेकिन यह ऐतिहासिक सत्य है कि सामाजिक बंधन ढीले पड़ने लग गये थे।

इसी प्रकर वैश्यों में भी विभाजन की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई थी। इनका समाज अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल और पालीवालों में विभाजित था। इन शाखाओं की भी उपशाखाएँ बन गई थी। लोढ़ा, सिंघवी, कोठारी, भण्डारी, मेहता2 आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय उप-शाखाएं थी। जैन धर्म के प्रभाव में आने से पूर्व वैश्य अपने आपको क्षत्रियों का ही वंशज मानते थे। ये अपने को सरावगी कहकर सम्बोधित करते थे। मध्यकाल में इन्हीं वैश्यों ने राजपूत राजाओं की सेवा में सैनिक एवं प्रशासनिक पदों को सम्भालकर वैदिककालीन व्यापार और वाणिज्य व्यवसाय को कम महत्व देना प्रारम्भ कर दिया था।

दास प्रथा : मध्ययुगीन राजस्थान में दास प्रथा का प्रचार था। दास तीन प्रकार के होते थे (1) दास, (2) गोली और (3) चाकर स्त्री और पुरुष दोनों को हो दास बनाया जाता था। दो प्रकार के दास भर्ती किये जाते थे। कुछ को खरीद लिया जाता था और कुछ दहेज में लड़की के साथ उसके माँ-बाप के यहां से आते थे। इनका कार्य अपने स्वामी की तन, मन, धन से सेवा करना होता था। इनका प्रबंध करने के लिए एक पृथक् विभाग होता था जिसे राजलोक कहकर पुकारा जाता था। यद्यपि रायधन-री वार्ता नामक पांडुलिपि में दासों के प्रभावपूर्ण कार्यों का उल्लेख है जिसकी पुष्टि सिरोही के राजकीय रिकार्ड से भी होती है, लेकिन वस्तुतः मध्यकालीन राजस्थान में दासों की स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी।3

विवाह समस्या : संयुक्तपरिवार की अवधारणा समाज का एक मूलभूत पहलू थी। एक संगठित संयुक्त परिवार प्रणाली के तत्वावधान में सांस्कृतिक परंपराएँ और 'संस्कार' एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रसारित होते थे। यद्यपि एक ही जाति में विवाह के मूल विचार को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था, फिर भी अंतरजातीय विवाह भी प्रचलित था। शाही हरम में विभिन्न जातियों की महिला सदस्य होती थीं। कूटनीतिक चालों और राजनीतिक संबंधों को बनाए रखने के एक भाग के रूप में, मुगल राजकुमार और राजपूत राजकुमारी के बीच विवाह भी असामान्य नहीं था। दहेज प्रथा अपना जाल फैला रही थी और इसलिए लड़की-जन्म को एक बोझ के रूप में देखा जाने लगा। बहुविवाह वास्तव में शाही परिवारों तक ही सीमित था और अक्सर इसके परिणामस्वरूप विरासत संबंधी झगड़े होते थे। सबसे निराशाजनक स्थिति विधवाओं की थी, विशेषकर उनकी जिन्होंने बहुत कम उम्र में अपने पति को खो दिया था। कुछ मामलों में उन्हें बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित रखा गया और सभी शुभ अवसरों से दूर रखा गया। इस प्रकार विवाह से संबंधित सभी मामलों में समाज न केवल पुरुष-प्रधान था, बल्कि रीति-रिवाज भी प्रधान था।

स्त्रियों की दशा का दुर्बल पक्ष - उस समय समाज में प्रचलित निम्न कुरीतियों के कारण स्त्रियों की दशा बहुत खराब हो गयी।

बहु-विवाह की प्रथा - राजपूतों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। प्रत्येक राजा के कई रानियाँ होती थी। वैश्यों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। राजस्थान में प्रचलित इस कुरीति के कारण पारिवारिक जीवन कलेशमय हो जाता था। इसमें विधवाओं का भी बाहुल्य होता था।

वेश्यावृत्ति - 13वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक राजस्थान में परम्परागत रु प से वेश्यावृत्ति की कुप्रथा प्रचलित रही, जो वेश्याएँ संगीत एवं नृत्य में निपुण होती थी, उन्हें राजकीय संरक्षण प्रदान किया जाता था और सरकारी कोष से उन्हें नियमित रूप से वृत्ति प्रदान की जाती थी। कई वेश्याएँ मंदिर में संगीत नृत्य करती थी, जिसके बदले में उन्हें पुरस्कार प्रदान किया जाता था।4 कई वेश्याएँ छोटी उम्र या किशोरवय की लड़कियों को खरीद लेती थी और उनसे अनैतिक धंधा करवाती थी। इस प्रथा को समाप्त करने अथवा नियंत्रित करने के लिए किसी भी राज्य ने कोई भी कदम नहीं उठाया।

बाल विवाह - मध्यकाल में राजस्थान में बाल-विवाह की कुप्रथा प्रचलित थी। हिन्दुओं को हमेशा मुसलमानो से इस बात का भय रहता था कि कहीं वे उनकी कन्याओं का उपहरण न कर लें। इस कारण वे लड़कियों को तरुणाई तक पहुंचने से पूर्व ही उनका विवाह कर देते थे। लगभग 6 या 7 वर्ष की आयु में ही कन्याओं का विवाह कर दिया जाता था। इससे जहाँ एक ओर स्त्रियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती थी, वहीं उनकी स्थिति भी खराब होने लगी।

सती प्रथा - राजस्थान की कुप्रथाओं में सती प्रथा का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराणों एवं धर्म निबन्धों में इस प्रथा का उल्लेख मिलता है। इस प्रथा के अनुसार मृत पति से साथ उसकी पत्नी जीवित जल जाती है। इस प्रथा को 'सहगमन' भी कहते है। शिलालेखों एवं काव्य ग्रन्थों में अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति रखने वाली पत्नी के लिए भी सती शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार सती होने वाली महिला के कार्य को सत्यव्रत कहा गया है।

जौहर प्रथा - सती प्रथा के समान ही एक और कुप्रथा राजस्थान में प्रचलित थी, जिसका नाम जौहर प्रथा था। जब शत्रु का आक्रमण होता था और स्त्रियों को अपने पति के लौटने की पुनः आशा नहीं रहती थी, और दुर्ग पर शत्रु के अधिकार की शत-प्रतिशत सम्भावना बन जाती थी, तब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से अपने को अग्न में जलाकर भस्म कर देती थी। इसे जौहर प्रथा कहते थे। ऐसे अवसरों पर स्त्रियाँ, बच्चे व बूढ़े अपने आपको तथा दुर्ग की सम्पूर्ण सम्पत्ति को अग्नि में डालकर भस्म हो जाते थे। धर्म तथा आत्म सम्मान की रक्षा के लिए इस प्रकार का कदम उठाया जाता था, ताकि शत्रु द्वारा बन्दी बनाए जाने पर उन्हें अनैतिक तथा अधार्मिक करने के लिए विवश न होना पड़े। ऐसे कार्य से वे देश एवं स्वजनों के प्रति भक्ति अनुप्राणित करते थे और युद्ध में लड़ने वाले योद्धा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए शौर्य एवं बलिदान की भावना से प्रेरित होकर शत्रुओं पर टूट पड़ते थे।

धर्म प्रचार : प्रारंभिक मध्ययुगीन काल से ही राजस्थान लगभग सभी धर्मों का धार्मिक केंद्र रहा है। फिर भी अधिकांश जनसंख्या हिन्दू थी। कुल मिलाकर, धार्मिक ढाँचा बहुत जटिल और रूढ़िवादी था, क्योंकि कहीं न कहीं इसमें अभी भी शंकर, रामानुज और रामानंद जैसे धार्मिक दार्शनिकों की अत्यधिक तनावग्रस्त विचारधारा के बीजाणु मौजूद थे। जहां इस्लाम अपना विस्तार करने की कोशिश कर रहा था, वहीं दूसरी ओर राजपूतों ने संस्कृति की महिमा और हिंदू धर्म के प्रति सम्मान बनाए रखने के लिए हर संभव प्रयास किया। उत्तर मध्यकाल में हिंदू धर्म को सरल बनाने और सदियों से खुले रहने वाले धर्म के धागों को बारीकी से बांधने का युग शुरू हुआ। इससे भक्ति आंदोलन की शुरु आत हुई जिसने हिंदू धर्म को फिर से जीवंत करने की कोशिश की और राजस्थान की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति को एक नई दिशा दी। संक्रमण काल ने विभिन्न नई सोच को जन्म दिया। ऐसे विचारकों को 'संत' कहा जाता था,5 जिन्होंने जटिल धर्म को उजागर किया और इसे आसान और समझने योग्य तरीके से आम लोगों के सामने प्रस्तुत किया। मूर्ति पूजा और निचले वर्ग के लिए पवित्र स्थान पर प्रतिबंध के पारंपरिक सिद्धांत को इन संतों द्वारा चुनौती दी गई थी। इस प्रक्रिया ने कई निम्न वर्ग के लोगों को हिंदू धर्म की संस्कृति से बाहर जाने से भी रोका। इस युग में मीरा, दादू दयाल, धन्ना, पीपा, सहजोबाई आदि जैसे संतों के दर्शन और धार्मिक रचना का आगमन हुआ। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन, हम कह सकते हैं, इस प्रकार एक था हिंदू धर्म को इस्लाम की चपेट में आने से बचाने

के लिए बहुदेववाद और मूर्तिपूजा जैसी प्रथाओं को हटाने का प्रयास किया गया। भक्तिआंदोलन के संतों के सामाजिक विचारों, जिन्होंने एक सर्वज्ञ ब्रह्मा पर जोर दिया था, को इस प्रकार हिंदुओं को अलग करने वाली व्यापक खाई को पाटने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

साहित्य : राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल का समय 16वीं सदी के अंतिम समय से लेकर 19वीं सदी तक माना जाता है। यह काल क्रम एवं स्तर दोनों दृष्टियों से बड़ा महत्व है। राजस्थानी साहित्य के इतिहास में इसे स्वर्ण काल की संज्ञा दी जा सकती है। इस काल में जहां वीर एवं भक्ति रसात्मक काव्यधाराएं अविरल गति से बहती रहीं, वहीं भक्ति साहित्य की धारा भी अबाध-गति से आगे बढ़ती रही। राजस्थानी साहित्य के इस त्रिवेणी के साक्षी यहां के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'वेली क्रिसन रुक्मणी री' में देखने को मिलते हैं, जो इस काल का प्रतिनिधि काव्य-ग्रंथ कहा जा सकता है। इधर उत्तरी भारत में भक्तिकी जो लहर है, वह राजस्थान को भी प्रभावित कर चुकी है। निर्गुण और सगुण दोनों ने ही राजस्थानी में विशाल छंदों में भक्तिपरक साहित्य की रचना की। निर्गुण सम्प्रदाय में जहाँ कबीर का स्वर सबसे उपर देखा गया था वहां सगुण में मीरां की मृदु वाणी भक्तों के हृदय में गहराई से उतरी हुई थी। निर्गुण सम्प्रदायों में नाथ सम्प्रदाय का भी प्राचीन काल से ही यहाँ अच्छा वोग था। जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के समय में नाथों का महत्व मारवाड़ में बहुत बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त जसनाथी, दादूपंथी, निरंजनी, रामस्नेही चरणदासी, लालदासी, विश्नोई आदि अनेक संप्रदायों के संतों ने अपना ज्ञान वाणियों के माध्यम से प्रकाशन किया। सगुण भक्तिके सूत्र राम और कृष्ण से संबंधित विपुल साहित्य यहां के भक्तों ने रचाया है। कृष्ण भक्तों में मीरां का स्थान सर्वोपरि है, इनमें से कुछ अतिरिक्त चंद्रसाखी, बख्तावर, सम्मानबाई, रणछोड़कुंवरी, रानी बांकावती सुंदर कुँवारी आदि काव्यत्रियों ने सरल भाषा के माध्यम से सरल भाषा के माध्यम से रचना की। मध्यकालीन राजस्थानी के भक्तिसाहित्य, जैन साहित्य, दोहा साहित्य, वेलि साहित्य, लोक-साहित्य, डिंगल गीत साहित्य, ख्यात साहित्य आदि के माध्यम से भी राजस्थान को समझा जा सकता है।6 निष्कर्षकतः कहा जा सकता है कि राजस्थान साहित्य के मध्यकाल में सृजित वीर रसात्मक, श्रृंगार रसात्मक और भक्तिपरक साहित्य के अतिरिक्तगद्य, नूतन साहित्य और लोक-साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष : मध्यकालीन राजस्थान का समाज वर्गों में विभाजित होने के उपरांत भी विभिन्न वर्गों में जातीयता घर करने लगी थी, वर्ग विभाजित समाज में सामन्जस्य बनाये रखने के लिए राजस्थान के राजा महाराजा योग्यता एवं स्वामिभक्तिके आधार पर प्रत्येक जाति के व्यक्तियों को सेवा में भर्ती करते रहे, धर्म के नाम समाज में कटुता नहीं थी हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध विशेष रूप से मातृत्वपूर्ण बने रहे थे। अतएव मध्यकालीन के अंत में सामाजिक कटुता और वैमनस्यता कम होती दिखाई दे रही थी। राजनीतिक आन्दोलन के साथ सामाजिक सुधार हुये थे वे इस दृष्टि से महत्वूर्ण थे कि यह उपदेशात्मक नहीं थे, वरन प्रयोगात्मक थे। स्वंय कार्यकर्ता कुरीतियों को समाप्त करके एक अंहिसात्मक समाज स्थापित करने के लिये गाँधी जी के रचनात्मक आन्दोलन के इस सिद्धान्त से प्रेरित थे कि अंहिसात्मक राष्ट्र भक्तिऔर समूह जीवन की एक आवश्यक शर्त है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, शिव लाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा,2020,पृष्ठ संख्या -56
2. डॉ. हुकमचंद जैन, ड? नारायण, राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य, परम्परा एंव विरासत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, 2018, पृष्ठ संख्या-124
3. शर्मा व्यास, कालूराम शर्मा राजस्थान का इतिहास (प्रारम्भ से 1956 ई.), पंचशील प्रकाशन,जयपुर,राजस्थान,2019, पृष्ठ संख्या-111
4. कर्नल डॉ. राजस्थान का इतिहास, प्रथम भाग, अनुवादक केशव ठाकुर, जयपुर, 2003, पृष्ठ संख्या-358
5. G.N. Sharma, Social life in medieval Rajasthan (1500-1800 A.D.) : with special reference to the impact of Mughal influence, Lakshmi Narain Agarwal,Agara, 1968, page no- 84
6. नरोत्तम स्वामी,राजस्थानी साहित्य एक परिचय, बीकानेर,2010,पृष्ठ संख्या-5

शोधार्थी , इतिहास विभाग,
मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग,
लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी, अलवर राजस्थान

'काला पादरी' उपन्यास में आदिवासी जीवन

डॉ. लक्ष्मी.एस.एस

आदिवासी भारत के मूल निवासी है। वे सदियों से इस भूमि पर रहते आये हैं और जल, जंगल और ज़मीन का मूल आधार है। 'आदिवासी' शब्द मात्र किसी जाति या वर्ग का सूचक नहीं बल्कि एक प्रतीक है', मानव सभ्यता के संरक्षक का। भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न समुदाय के लोग अपनी सांस्कृतिक विविधता को संजोए हुए एक साथ निवास करते हैं। इम्पीरियल ऑफ इंडिया की परिभाषा इस बात की पुष्टि करती है कि आदिवासी सामूहिक रूप में रहते हैं जो उनकी सबसे बडी ताकत है। वहीं ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार 'जनजाति विकास के आदिम अथवा बर्बर आचरण में लोगों का समूह है जो एक मुखिया की सत्ता स्वीकारते हैं तथा साधारणतया अपना एक समान पूर्वज मानते हों। 1

हिंदी साहित्य में आदिवासी समाज केन्द्रित उपन्यासों की संख्या कम है। आदिवासी समाज सम्बन्धी उपन्यास लिखने वालों में सर्वप्रथम नाम जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का आता है। इन्होंने सन् 1899 में 'बसंत मालती 'नामक उपन्यास में मलयपुर आँचल के मल्लाह आदिवासी समाज का चित्रण किया है।इसके पश्चात् सन् 1904 में मन्नन द्विवेदी ने 'रामलाल' नामक उपन्यास लिखा । प्रस्तुत उपन्यास में आरंभ से लेकर अंत तक आदिवासी समाज रहा है।

तेजिन्दर द्वारा लिखित 'काला पादरी' मध्यप्रदेश के उराँव आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर केन्द्रित एक यथार्थवादी उपन्यास है। उपन्यास की यथार्थपरकता के सम्बन्ध में लेखक की टिप्पणी है 'इस उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं तथा स्थितियाँ यथार्थ के बहुत करीब हैं।'[2] इस उपन्यास में मध्यप्रदेश के काला पादरी उपन्यास की कथाभूमि को लेकर प्रसिद्ध समीक्षक वीरेन्द्र यादव की टिप्पणी भी महत्वपूर्ण है, 'भूख की दारुण यातना का परिप्रेक्ष्य इधर के जिस ताजातम उपन्यास में अभिव्यक्त हुआ है, वह है तेजिन्दर का उपन्यास' काला पादरी। इस उपन्यास में लेखक ने उराँवों की परंपरागत सामाजिक - सांस्कृतिक राजनीतिक व्यवस्था को ज्यादा तवज्जो देकर उराँवों के जीवन को आधुनिक संदर्भों से अधिक जोड़ा है।[3]

अ) सामाजिक परिस्थितियाँ

उराँव समाज पुरुष प्रधान है पर उनकी समाज व्यवस्था समानतावादी है। सामुदायिकता इनका सबसे बड़ा लक्षण है। इनकी दुनिया बाहरी जगत से एकदम अलग है। वे सब प्रसन्न हैं, , खुश हैं। इस सूखी और नंगी पहाडी के ऊपर तीस घर को एक गाँव था - भटहरा ।..... पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे, सब एक साथ। गाँव में सरकार जैसे नहीं थी, बिजली भी नहीं थी। पूरे गाँव में कुल जमा चार साइकिल थे। ये साइकिल बारी-बारी से चलते थे। कोई एक आदमी राज नगर तक जाता और मिट्टी का तेल लेकर वापस भाग आता। बाहर की दुनिया की किसी और चीज़ की उन्हें खास ज़रूरत नहीं थी । साल में एक बार राजनगर में वे कुछ बोरे कोदो-कुटकी के भिजवाते और कुछ धोतियाँ अपने साथ ले आते । उराँव की परंपरागत जीवन पद्धति में बाहरी शासकों ने भी हस्तक्षेप करना मुनासिब नहीं माना, मुगलों ने भी उराँव आदिवासियों के गाँवों और उनके स्वायत्त सामुदायिक जीवन में कोई रुचि नहीं दिखाई और न ही किसी तरह का हस्तक्षेप किया।[4] उराँवों की परंपरागत शासन प्रणाली में गाँव का मुखिया सर्वेसर्वा नेता होता है। काला पादरी में लेखक ने गाँव का नेतृत्व सरपंच के हाथों में सौंपा है। गाँव का सरपंच भी लोगों के सुख दुःख में सहयोग करता है, मैं इस गाँव के सरपंच से इस घटना के बारे में बात करना चाहता था। सरपंच अंबिकापुर गया हुआ था। साइकिल पर, लगभग पैंतीस किलोमीटर मुझे बताया गया था कि वह आज ही सुबह गया है, गाँव के कुछ लोगों के लिए घर -मरम्मत का ज़रूरी सामान लाने और शाम सूरज ढलने से पहले लौट आएगा । [5]

उराँवों की पारिवारिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है। स्त्री-पुरुष दोनों परिवार का आधार होते हैं। परिवार की जिम्मेदारियां निभाने में स्त्रियों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है, 'एक अधेड़ सी औरत, जिसने एक हाथ में झोला पकड़

रखा था और दूसरे हाथ में झाड़ू । उसने बेहद घिसी हुई और पुरानी साड़ी पहन रखी थी। उसका चेहरा ताजा था और धुला हुआ। वह खुश दिखाई दे रही थी और जेम्स को देखकर और भी ताजा दम हो गयी थी। उसने अपने झोंपड़े का कुंडा खोलकर हम लोगों को भीतर बुलाया!'[6] उराँव परिवार में बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाते हैं, थोड़ी दूर मिट्टी की दीवार से टिककर लगभग आठ बरस का एक लड़का अपनी छोटी-छोटी हथेलियों में जामुन लेकर खड़ा था। उसके बदन पर सिवाय एक छोटी सी लंगोटी के और कुछ नहीं था। वह अपने पास आने वाले हर आदमी की आँखों में देखता था, दो जामुन - चटक - मटक।'[7]

आ) आर्थिक परिस्थितियाँ : उराँव आदिवासियों की आर्थिक व्यवस्था बेहद कमज़ोर है। दूसरे शब्दों में कहे तो उराँव कंगालियत के कगार पर खड़े हैं। दो जून की रोटी का जुगाड़ भी नहीं कर पा रहे हैं। उराँव आदिवासी मूलतः किसान है। उनकी आय का प्रमुख स्रोत कृषि है। सरगुजा क्षेत्र अकालग्रस्त इलाका है, बरसात बड़ी अनियमित रहती है। अतः दुर्भिक्ष के चलते कृषि से उनकी ज्यादा उम्मीदें बेमानी हैं। इस साल का अकाल भी भयावह होगा उसने आसपास की सूखी ज़मीन देखकर कहा 'हाँ, अगस्त लगभग बीत गया और अभी तक बोआयी नहीं हुई।'[8] उराँव किसानों को कृषि के लिए बैंक लोन मुहैया कराता है। कुआँ खुदवाने के लिए, पंपसेट लगवाने के लिए। उराँव आदिवासी रायसाहब के शोषण -जाल में फंसकर छटपटा रहे हैं, तड़प रहे हैं। उनकी गिरफ्त से बच पाना असंभव है, न केवल बैंक प्रशासन बल्कि शासन व सरकार के मंत्री भी उनके इशारों पर काम करते हैं। अकाल ने आदिवासी उराँवों की कमर तोड़ दी थी। दिन-ब-दिन उनकी हालत बिगड़ रही थी।

कृषि के अतिरिक्त उराँव जीवनयापन के लिए मज़दूरी भी करते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों मजदूरी करते हैं, थोडी ही दूरी पर कुछ मज़दूर अपने काम में लगे थे। जमीन की खुदाई कर रहे थे। जो मज़दूर वहाँ काम करते थे उनमें एक औरत भी थी, जिसने अपनी साड़ी के पल्ले में 'कुछ दिन' के एक बच्चे को गठरी की तरह बाँध रखा था।"[9] उराँव दिहाडी मज़दूर के रूप में अधिकतर संख्या में काम करते थे,किन्तु कुछ मजदूर बंधुआ मजदूर के रूप में भी बंधक थे। कुजूर जब दस साल का था तो उसका बाप उसे गोयल सेठ के पास गिरवी रखा था।[10]

प्रसिद्ध समीक्षक वीरेन्द्र यादव के उपन्यास के संदर्भ में टिप्पणी गौरतलब है - तेजिन्दर का काला पादरी जिस आदिवासी इलाके सरगुजा की कहानी है, वह लोकतंत्र का सबसे सस्ता सामंतवादी संस्करण है। यहाँ के आदिवासियों के लिए जमींदारों और भूत प्रेतों में कोई फर्क नहीं था। दोनों ही एक बार जो इन्हें पकड़ते थे तो फिर पूरा निचोड़ कर भी नहीं छोड़ते थे।"[11]

इ) धार्मिक परिस्थितियाँ : उराँव आदिवासियों की धार्मिक व्यवस्था बड़ी संक्रमित है। वे परंपरागत धर्म के प्रति भी आस्थावान है और आधुनिक ईसाइयत के प्रति भी श्रद्धावान है। उनके परंपरागत धर्म में 'धर्मश' प्रमुख देवता है। यह उनका सर्वोच्च देवता है । सुख दुख के दिनों में उराँव बड़ी श्रद्धा से उन्हें याद करते हैं, 'अपनी अपनी अंतडियाँ बाहर निकालकर फटे पेट के झोले में छिपाने की कोशिश कर रहे काले और भूखे लोग, बैगा की ओर एकटक देख रहे हैं। वे चाहते हैं कि सींगी देवता के प्रभाव से कुछ ऐसा हो कि यह जो उनका साथी गाँव के बीचोंबीच नीचे जमीन पर औंधा पड़ा है और जिस पर प्रेतात्माओं का प्रकोप है, उस पर धरमेस की कृपा हो चाहे तो सींगी देवता के रास्ते से या फिर सीधे आकाश से, किसी भी तरह, वह उठ खड़ा हो ।'[12]

उपन्यास में अपनी परंपरागत जीवन पद्धति की वकालत करते हुए जेम्स खाखा कहता है , आखिर एक दो पीढ़ी पहले तो हमें अपने अस्तित्व का पता नहीं था ठीक से , और जब पता चल गया है तो कहते हैं कि भूल जाओ, तुम्हारा कुछ नहीं है, जो कुछ हैं , प्रभु परमेश्वर का है और परमेश्वर का रास्ता मिशनरीज से होकर जाना है, माई फूट, मैं कहता हूँ, परमेश्वर का रास्ता हमारी छोटी-सी नदी ईब से होकर गुजरता है, हमारे पेड़ों और पहाड़ों से होकर जाता है, और तो और सोज़ेलिन मिंज की आँखों से होकर जाता है, ..."[13]

उराँव आदिवासियों को लगता है कि उनकी आइडेंटिटी उराँव होने में है न कि ईसाई होने में। वे ईसाई

उराँव और आदिवासी उराँव में स्टेटस को लेकर भेद करने के पक्ष में नहीं है। गैर ईसाई उराँवों से मिलजुलकर रहना पसन्द करते हैं। हम भले ही ईसाई बन गए हो, हमें ऐतराज नहीं लेकिन मूलतः हम उराँव होने के नाते वे उराँव जिन्होंने प्रभु ईशु के मार्ग को नहीं अपनाया उनसे हमारा कोई विरोध नहीं होना चाहिए, उनके और हमारे कंसर्न एक हैं , अलग अलग नहीं। अगर उनके पास खाने लिए चावल नहीं है तो दैट शुड बी अवर कंसर्न आल्सो।[14] ईसाई मिशनरियों की परोपकारी भूमिका के प्रभाव स्वरूप उराँवों ने बड़ी तादाद में ईसाई धर्म अंगीकार किया है। लेकिन बाद में चर्च के रवैये को लेकर उनका मोहभंग भी होता है। उन्हें चर्च और हिन्दू फंडामेंटलिस्टों में कोई फर्क नजर नहीं आता है। चर्च रोटी ज़रूर देता है लेकिन अस्मता छीन लेता है, पहचान खत्म कर देता है।

उपन्यास में जेम्स खाखा की सोच के माध्यम से इसे लेखक ने यूँ रूपायित किया है, 'क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज में पहाड़ थे, नदियाँ थी', पेड़ थे, शेर थे ,चीते थे और राज्य ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लॉइट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर टेम्स अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिये हिन्दू, फ़ण्डामेंटालिस्टों और आपमें अब कोई फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेजेज छीन ली आप लोगों ने।[15]

उराँव आदिवासियों के जीवन में चर्च के अनगिनत उपकार है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं होता कि ताजिंदगी चर्च की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया जाय। यह सोचना एक तरह का बंधुआ विचार है, 'माँ कहती है कि चूंकि चर्च ने तुम्हारे पिता और दादा को रोती दी थी, काम किया था और राजा की बेगार से मुक्तिदिलवायी थी इसलिए तुम्हें अपना पूरा जीवन चर्च की सेवा में बिताना है ।[16]

ई) राजनीतिक परिस्थितियाँ : उराँव आदिवासियों की राजनीतिक व्यवस्था बड़ी मज़बूत हैं। विशेषतः उनकी परंपरागत शासन व्यवस्था और सुदृढ़ थी। रोहतासगढ़ उराँवों की राजनीतिक कुशलता का उत्तम उदाहरण है। उपन्यास में लेखक ने इस विमर्श को यूं विन्यस्त किया है, 'उराँव जाति के उद्‌गम पर इतिहासकारों के मत चाहे अलग-अलग हों, लेकिन यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में उराँव रोहतास के पठार में रहा करते थे। उन्होंने रोहतासगढ़ में अपना शासन व्यवस्थित और सुदृढ़ किया था। उन्होंने कई आक्रमणों को सफलता के साथ सामना किया था, लेकिन उन्हें चेरों शासकों के हाथों पराजित होना पड़ा। यह लगभग ईसा पूर्व एक सौ वर्ष की घटना है।[17]

देश की मुख्य धारा की राष्ट्रीय राजनीति से उराँवों का कोई खास - लेना-देना नहीं है। देश की राष्ट्रीय राजनीति में भागीदारी करने में भी खास उन्हें दिलचस्पी नहीं है। देश के प्रमुख राजनीतिक दल राजकीय हित - लाभ की गणना में व्यस्त हैं। साम्प्रदायिक ताकतें आये दिन मिशनरीज को अपनी 'टार्गेट' बना रही हैं। उन्हें मेजर पोलिटिकल पार्टियों में उम्मीद नहीं है। अतः वे नए राजकीय, विकल्प की तलाश में हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल आदिवासियों का समर्थन जुटाने में लगा है । हर कोई चाहता है कि येन - केन प्रकारेण आदिवासियों पर कब्जा कर लिया जाय, मानो वे नो मैन्स लैंड हों ।

उ) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ : उराँव समाज व संस्कृति सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बड़ी समृद्ध है। अपने परंपरागत रीति - रिवाज, गीत - संगीत, नृत्य, पर्व-त्योहार, मान्यताएँ एवं जीवन पद्धति अद्‌यावधि अक्षुण्ण है। भारत में अन्य आदिवासियों की तरह उराँव संस्कृति में अतिथि का बड़ा आदर होता है, सम्मान होता है। अतिथि देवता समान होता है । उराँव अतिथि सत्कार के दौरान हाथ मिलाते हैं । पुरुष तो पुरुष, औरतें भी हाथ मिलाकर अतिथि का स्वागत करती हैं। उराँव आदिवासियों में मृतक अंतिम संस्कार की परम्परागत व्यवस्था कायम है। वे मृतक का सम्मान करते हैं।

उराँव आदिवासियों में मृत्यु सम्बन्धी पक बड़ा समारोह आयोजित होता है, जिसे 'पबलावर' कहा जाता है। 'फसल कटने के बाद एक निश्चित दिन गाँव के वर्षभर के सभी मृतकों के अवशेष मात्र पेड़ पर से उतारे जाते हैं। फिर उन्हें सजाया जाता है। कुंडी यानी की उराँव कुलों या पुश्तों के स्मरण पत्थर । अवशेष पात्रों को कुंडी पत्थर पर मारकर फोड़ा जाता है। अवशेष विसर्जित कर दिये जाते हैं और इस तरह यह विश्वास किया जाना है कि मृतक अब

अपने पूर्वजों की संगति प्राप्त कर चुके हैं।... जिनकी मृत्यु असमय और अप्राकृतिक ढंग से होती है उनके लिए यह समारोह नहीं होता। ये वे है जिनकी मृत्यु का कारण कोई दुर्घटना अथवा हत्या हो। डुबल, पासल और टांगल यानी कि डूब मरने तथा हत्या एवं आत्महत्या के शिकार इस गिनती में आते हैं। प्रसव-पीडा में मर जानेवाली स्त्री भी इसी श्रेणी में आती है।'[18]

उराँव आदिवासी बड़े अन्धविश्वासी होते हैं। वे भूत प्रेत, जादू-टोना, चुड़ैल-डायन प्रथा इत्यादि में अत्यधिक यकीन करते हैं। इन दुष्ट ताकतों से बचने के लिए वे ओझा की शरण लेते हैं। ओझा गाँव का सबसे सम्माननीय व्यक्तिहोता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह सब कुछ होता है। बीमारी किसी सामान्य से लेकर जानलेवा बीमारी में, उराँव ओझा के पास इलाज करवाते हैं। उराँव आदिवासियों का आहार साधारण होता है। रोजमर्रा के भोजन में वे चावल- दाल का ज्यादा उपयोग करते हैं। वे कोदो [19] उगाते थे, और खाते थे ।उराँव आदिवासी शराब सेवन भी करते हैं। वे अधिकतर हँडिया [20] का इस्तेमाल करते हैं। पर्व उत्सव या अतिथि के आगमन के समय वे हँडिया का खूब सेवन करते हैं।

उराँव आदिवासियों का पहनावा भी सीधा -सादा होता है। वे अद्यावधि अर्धनग्न अवस्था में जीवन जीते हैं। पुरुष सामान्यतः धोती -कमीज एवं औरत साड़ी का उपयोग करती है। उराँव आदिवासियों में गुदने गुदाने की परम्परागत प्रथा कायम है। विशेषकर उराँव स्त्रियाँ गुदने गुदवाती है। वे गुदनों का आभूषण के तौर पर प्रयोग करती हैं। उनकी मान्यता है कि मृत्यु के दौरान अन्य गहने तो उतार लिये जाते हैं, किन्तु गुदने हमेशा साथ रहते हैं। उराँवों का निवास स्थान साधारण होता है। कच्चे झोपड़ों के साथ आजकल कहीं-कहीं पक्के मकान बनने लगे हैं।

इस प्रकार 'काला पादरी' उपन्यास में तेजिन्दर ने उराँवों की परम्परागत सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था को ज्यादा तवज्जो देकर उराँवों के जीवन को आधुनिक संदर्भों से अधिक जोड़ा है। 'काला पादरी' की अंतर्वस्तु वर्तमान समय की अत्यन्त संवेदनशील अंर्तवस्तु है, इसमें व्यक्तिऔर समाज के भौतिक जीवन की संवेदनात्मक एवं मानवीय पहलू का सजग चित्रण है। निःसंदेह काला पादरी के माध्यम से तेजिन्दर ने उपन्यास जगत को गौरवान्वित किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ.सविता चौधरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में आदिवासी चेतना पृ. 11
2. काला पादरी, तेजिन्दर पृष्ठ 1
3. डॉ. ईश्वर सिंह राठवा, हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन पृ 165
4. काला पादरी पृ 84
5. काला पादरी पृ 66
6. काला पादरी पृ 70
7. काला पादरी पृ 136
8. काला पादरी पृ 48
9. डॉ. ईश्वर सिंह राठवा हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन पृ 168
12. काला पादरी पृ 87
13. काला पादरी पृ 60
14. काला पादरी पृ 128-129
15. काला पादरी पृ 57
16. काला पादरी पृ 59
17. काला पादरी पृ 107
18. काला पादरी पृ 89
19. एक तरह का अनाज
20. शराब

सहायक ग्रन्थ सूची

1. तेजिंदर , कालापादरी, साहित्य भण्डार, उत्तर प्रदेश
2. डॉ. ईश्वर सिंह राठवा हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, माया प्रकाशन, कानपुर ।
3. डॉ. सविता चौधरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में आदिवासी चेतना, अतुल प्रकाशन, कानपुर।
4. पूरनमल यादव, आदिवासी समाज और आधुनिकता, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर ।
5. प्रो. दिनेश भाई किशोरी, काला पादरी उपन्यास में आदिवासी जीवन : एक अध्ययन, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर

सहायक अध्यापिका , हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज , तिरुवनंतपुरम

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

बारहवाँ देवपद - तृश्शिवपेरूर (तृश्शूर)

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

1968 अगस्त के उन्नीसवीं तारीख को तृश्शूर के श्री केरलवर्मा कॉलेज के मलयालम विभाग में अध्यापक के रूप में मेरी नियुक्ति हो गई। उस समय कॉलेज के प्रिंसिपल थे डॉ.श्रीधरन नायर जो पहले तिरुवनंतपुरम के महात्मागाँधी कॉलेज में अंग्रेज़ी विभाग के अध्यापक थे। मलयालम विभाग के दूसरे अध्यापक थे श्री.इ.के.नारायण पोट्टी, पंडित रत्न श्री.के.पी.नारायण पिषारडी, श्री प्रभाकरन नायर, श्रीमती अम्मिणीयम्मा, श्री बालचंद्रन कर्ता एवं श्री शोरणूर कार्तिकेयन। बाद में श्री नारायण मेनोन और श्री बालकृष्ण भी हमारे विभाग में आ गए। संस्कृत विभाग के अध्यापक थे प्रोफ. हरिहरन एवं सुप्रसिद्ध कवि श्री एन.डी. कृष्णनुण्णी। हमारे विभाग में एम.ए. की पढ़ाई शुरू होनेवाली थी। उसका पाठ्यक्रम आदि तैयार करने में मेरा भी सहयोग था।

पंडितरत्न श्री के.पी.नारायण पिषारडी का घर कॉलेज के निकट ही था। घर का नाम था 'नारायणीयम'। घर में उनकी पत्नी श्रीमती पाप्पिक्कुट्टी पिषारस्यार और सरस्वती तथा भाग्यलक्ष्मी नामक उनकी दो लड़कियाँ थीं। कॉलेज के पास ही श्री के.आर.मेनोन का 'शिवानंदम' नामक घर था। वे तिरुवनंतपुरम के टैट्टानियम कंपनी में इंजनीयर का काम करते थे। उनके परिवार के साथ मैं पूर्व परिचित था; अतः उन्हीं के साथ मेरे रहने का सारा प्रबंध किया गया। उस परिवार के साथ मेरा जो अटूट संबंध स्थापित हो गया था अब वह अत्यंत मधुर स्मृतियाँ बन कर रह गई है।

श्री केरलवर्मा कॉलेज के अध्यापन के साथ ही मुझे श्री भरतमुनि के विख्यात नाट्यशास्त्र ग्रंथ के अध्ययन करने का बहुत बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे महान गुरु थे पंडित रत्न श्री.के.पी.नारायण पिषारडी। नित्य सबेरे सात बजे मैं उनके घर पहुँचता था और नौ बदे तक गुरु जी मुझे नाट्यशास्त्र के गहरे सिद्धांतों तथा तत्वों का अध्ययन कराते थे। उसके बाद हम दोनों अपना कॉलेज जाते थे। कभी कभी शामको हम 'वटक्कुंनाथ मंदिर' जाते थे। भगवान शिवजी का यह मंदिर तो विश्व भर में प्रसिद्ध है। (वटक्कुंनाथ का मतलब है उत्तर दिशा का नाथ; भारत की उत्तर दिशा में स्थिति पवित्र पहाड़ कैलाश का नाथ शिवजी।) इस मंदिर के कूत्तंपलम (नाट्यगृह) के रंगमंच पर चाक्यार कूत्तु

और कूड़ियाट्टम का अवतरण (संस्कृत नाटकों का शास्त्र-सम्मत अभिनय) होता था। कोई दूसरा महान पंडित श्री एल.एस. राजगोपाल भी हमारे साथ होते थे। वे तो साहित्य, संगीत एवं केरल के दृश्य एवं श्रव्य सभी कलाओं की गहराइयों में डूबकर उन सब का पारंगत हो गए थे। मैं अपने गुरु और श्री.एल.एस.राजगोपाल, इन दोनों अद्‌भूत प्रतिभा-संपन्न व्यक्तित्वों के बीच में बैठ कर कूत्तु तथा कूडियाट्टम का आस्वादन करता था। केवल रसास्वादन नहीं; बल्कि ये दोनों गुरु जन मुझे इस अनुपम वरिष्ठ प्राचीन नाट्यकला का विशद विश्लेषण कर समझाते थे। श्री. माणी माधव चाक्यार, श्री अम्मन्नूर माधव चाक्यार और श्री पैंकुलम राम चाक्यार इस कला के प्रयोक्ताओं में अग्रणी कलाकार थे। इन से मिलने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। तृश्शूर में रहते समय इस सुप्रसिद्‌ध मंदिर के अलावा अन्य बहुत से विख्यात मंद्रिरों एवं सांस्कृतिक केंद्रों (उदाः केरल कलामंडलम) के दर्शन का भी सुअवसर मुझे मिला था।

मेरे गुरु प्रोफसर पिषारडी जी ने 'आयातमायावम' नामक अपनी जीवनी में यों लिखा है - "श्री वी.एस. शर्मा जब तृश्शूर के श्री केरलवर्मा कॉलेज के मलयालम विभाग के अध्यापक बन कर आये थे तब से लेकर आज तक वे मेरे आप्त हैं। हाँ; केवल साल भर ही वे यहाँ हमारे साथ थे। उन दिनों नित्य सबेरे भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का अध्ययन करने के लिए वे मेरे घर आया करते थे। उन्होंने साहित्य एवं कला संबंधी जितने ग्रंथ रचे उन सबह का संशोधन मैंने किया था। उनका प्राक्कथन भी बड़े संतोष के साथ मैंने लिखा था। मेरे पूज्य गुरु जी श्री पुन्नश्शेरी नीलकण्ठ शर्मा का भागिनेय हैं डॉ.वी.एस. शर्मा और वे हमारे घर का एक अंग जैसा हो गया था। हर विषय वे बड़ी तेज़ी से लिखा करते थे। यह देख मैं आश्चर्य चकित होता था। "मास्टर जी ने मुझे कितना अभीज्ञ बनाया यह कह नहीं सकता। उनकी महानता तथा पांडित्य के प्रति नतमस्तक हूँ मैं। उनकी कृपा से धन्य हूँ मैं। मास्टर जी के भाई श्री अच्युत पिषारडी और उनके परिवार के साथ भी मेरा अपना जैसा गहरा संबंध हो गया। उसी प्रकार मास्टर जी के प्रिय मित्र प्रोफेसर वासुदेवन इलयतु और उनके शिष्य डॉ.ई.आर.श्रीकृष्ण शर्मा के साथ भी मेरा निकट का संबंध हो गया था। श्री वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनोन, श्री वी,टी इंदुचूडन, श्री एन.के.शेषन, श्री पुत्तेष़त्तु रामन मेनोन, श्री आट्टूर रविवर्मा जैसे विख्यात व्यक्तित्वों एवं कवियों के साथ भी मेरा परिचय हो गया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई के तृश्शूर में रहते समय नगर के तथा उसके निकट के प्रतिष्ठित मंदिरों में जाकर भगवान के विभिन्न रूपों के दर्शन एवं प्रार्था करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उनमें नगर के विश्व-विख्यात मंदिर श्री वटक्कुंनाथन, गुरुवायूर श्रीकृष्ण मंदिर, तप्रयार श्रीराम मंदिर, ऊरकम एवं कोट्टुङ्ङल्लूर के देवियों के मंदिर इरिंजालक्कुटा का भरत मंदिर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

नारियल के पेड़ पर चढकर नारियल तोड़नेवाला कुंञ्जूंञ है। उस जमाने में नारियल पर चढ़ना भी एक विशेष समुदाय का काम था। कुंञ्जूंञ बूढ़ा हो गया। वह जब बीमार पड़ता था तो बेटा नारायणन ही नारियल तोड़ने के लिए आता था। पहले तो मैं नहीं जानता था कि नारायणन असम में कुंञ्जूंञ का बेटा नहीं, उसकी पत्नी के प्रथम पति से जन्मा पुत्र है।

युवक नारायणन से एक छोटे बच्चे का सा वात्सल्य ही कुंञ्जूंञ दिखाता था। माताजी कुंञ्जूंञ का नाम लेकर पुकारती थीं। पर हम बच्चों से नाम के साथ मूप्पर (वरिष्ठ) शब्द भी जोडकर पुकारने का उपदेश दिया था। समूह में दलितों का भी आदर करने के लिए मेरे बचपन से ही मुझे शिक्षा देनेवाली माँ थी। "उम्र से बड़े लोगों का आदर करना चाहिए, वहाँ जाति नहीं देखना चाहिए।" ऐसी माँ कहती थीं। लेकिन आँगन में गट्ठा खोदकर, उसमें केले का पत्ता रखकर खाना खानेवाले, उनको बरामदे में भोजन परोसने के लिए माँ इच्छा रखती थी, पर रिश्तेदारों के विरोध के कारण हो नहीं हो सका। यही नहीं, परिवार के सदस्यों के बीच माँ को 'निषेधी' नाम भी पड़ गया।

हवेली के दक्षिणी भाग में एक चावड़ी (घर के सामने का छोटा मकान) है। आज हम उसे आउट हाउज़ कहते हैं। खुला हुआ बरामदा और दोनों घरों पर दो कमरे और एक रसोई घर से युक्त छोटा सा घर। माँ से भी बीस साल अधिक उम्र के भाई डॉ.पी.सी.पद्मनाभन तंपी के लिए इस 'चावड़ी' का निर्माण किया गया था। वे मशहूर चित्रकार, दंत डॉक्टर और श्रीमूलम पोपुलर विधान सभा से चुने गए एम.एल.सी (मेंबर ऑफ लेजिस्लेटीव काउंसिल) थे। उच्चसदन और निम्न सदन रूपी प्रजा सभा में सदस्य बने मित्र चाचाजी से मिलने आया करते थे। तत्कालीन सामाजिक नियम के अनुसार निम्न जाति के लोगों को हवेली बरामदे में चढ़ने तक की अनुमति नहीं थी। ऐसे लोगों का सत्कार करने और आवश्यक हो तो रहने के लिए ही चाचाजी ने उस 'चावड़ी' का निर्माण किया था। मशहूर माई अठाईसवीं वर्ष की अल्पायु में मर जाने पर वह अनाथ घर बन गया। फिर माँ ने चावड़ी को किराये पर दे दिया। मशहूर संगीतकार मलबार गोपालन नायर ही उस चावड़ी में रहते थे। आवश्यक मरम्मत करने के लिए पैसा न होने से अब खाली पड़ा है। चावड़ी भी नारियल के पत्तों का घर है। उसका भी छप्पर नहीं डाला है।

वर्षा का ठहाका थमना नहीं है। हवेली के दक्षिण 'तळम्' (घर से सटाकर बना खुला कमरा) में गतकालीन वैभव के शेष प्रतीकों में से एक 'आट्टुकट्टिल' (झूला जैसा पल्लंग) में माँ का गले सगाकर लेटनेवाला मैं चौंक उठा। मेरा मुख और शरीर गीला हो गया था। हवा की शक्ति को आत्मसात् करने वाली वर्षा का पानी बलहीन पुराने नारियल के पत्तों को शोर दीमक खाए शहतीर और छतों को पराजित करके नीचे आकर मुझे नहा लिया था। स्पटन है या यथार्थ इसे पहचानने में असमर्थ अवस्था में मैं ने चौंकते हुए उठकर 'माँ' ऐसा पुकारा। हवा और वर्षा की आवाज़ के बीच में भी बिना थकी हुई

माँ की रुलाई मुझे यथार्थ स्थिति में लायी। जब से होश आयी तब से मैं ने सब से अधिक वर्षा के ताल के रूप में मेरी माँ की सिसकियाँ ही सुनी थीं। एकाएक चौंका देनेवाली बिजली की चमक में प्रागन के खंभे से लिपट कर रोनेवाली माँ को मैंने देखा। अगली बिजली की भयानक ज़रा सा प्रकाश में दौड़ते हुए मैंने माँ को गले लगाया। पाँच वर्ष की आयु के मुझे उठाकर कंधे पर लिटाकर माँ ने पूछा - "मेरा लाडला, क्या तू जाग गया....?" माँ, मुख पानी गिरा था।" बिस्तर पूरी तरह गीला हो गया।

माँ ने गीले हुए मेरे मुख पर चूम लिया। माँ के आँसू और मेरे मुख को गीला कहनेवाला वर्षों का पानी एक हो गए।

"कम से कम बच्चे जाग न जायें तो अच्छा रहता।" जिस बड़े भाई वासुदेवन तंपी को मैं 'वावुत्तत्तन' नाम से पुकारता था और दूसरे बडे भाई गोपालकृष्णन तंपी के दक्षिण कमरे में दरवाज़ा बंद करके सो रहे थे। वर्षा का जितना भी परिश्रम करने पर भी तह में प्रभाव डालना आसान नहीं है। सागौन की लकड़ी से ही उसकी छत का निर्माण हुआ था।

वे कच्चा चावल डालने के धान्यागार के कमरे थे। तह और उससे लगे कमरे मणिच्चित्रत्ताषु (विशेष प्रकार और आकार का ताला) से युक्त दरवाज़ों के कमरे हैं। कमरा खोलने का शब्द पडोसी के छरों में सुनाई देगा।

"माँ, बत्ती जलाइए। मुझे डर लगता है। "

मुझे एक चुंबन भी देकर माँ ने कहा - "बेटा, मैंने देखा। पर दियासलाई गीली हो गई, जलती नहीं है।" मुझे नीचे खडा करके छाती पीट कर माँ ने चिल्लाया।

मेरे वेलायुध स्वामी (वेलायुधन या सुब्रह्मण्यन नामक ईश्वर) यह घर टूट कर गिर जाएगा क्या? मेरे लिए बसने का स्यान भी क्या नष्ट होगा?

माँ अपने सबसे प्रिय ईश्वर रूपी मुरुकन को पुकारती हुई रो रही थी। हरिप्पाटु मंदिर की मुख्य मूर्ति है सुब्रह्मण्यन। मैं भी रोने लगा।

मेरा बेटा जाकर सो जा, ऐसा कहकर माँ मुझे कंधे पर लिटाकर धीरे से गाने लगी।

कान्हा तू प्रिय रोना मत, मक्खन, दही और दूध मिलाकर भात यह मैं लुढ़ककर, बड़ भाई से भी पहले कर कौर, पाने को आओ बच्चा।

गद्‌गदों में रचित उस आनंद भैरवी का थपथपाना भी मुझे सुलाने में असफल हुआ।

एकाएक बारिश की गडगडाहट के बीच में भी चौंका देने वाला एक शब्द सुनाई दिया।

दक्षिणी आँगन में पहरेदार के समान खडा रहने वाले भीमाकार का प्राचीन पारस पीपल वृक्ष जड उखड कर गिर पडा, ऐसा ही माँ ने सींचा था। रसोई घर से लगकर सामने स्थित पेड था। सबेराहोने के बाद पूरे आँगन पर उस पेड से बनाई जानेवाले फूलों की रंगोली होगी...। वह पारस वृक्ष मेरा प्रिय मित्र है।

"काश.... मेरा पारस वृक्ष" ऐसा कहकर माँ जब चौक पड़ी तो मैं भी चौंक पडा।

इस अंधेरे में मैं कहाँ जाऊँगी...? दरवाज़ा खोलकर कैसे आंगन पर उतरेगी? साहस के साथ माँ अंधकार में आगे बढ़ी...

"माँ.... माँ... दरवाजडा मत खोलिए। मुझे डर लगता है.." मैं रो पड़ा। माँ तुझे साथ लेकर झूसा जैसे पलंग पर जाकर बैठी। वह बड़ी आवाज़ सुनकर ही सही, वावुत्तत्तन और दूसरा बडा भाई दक्षिण के घर का दरवाज़ा खोलकर तळम के ओर आए।

कमरा खोलने के लिए तुमसे किसने कहा.... दिया जलाने के लिए दियारुलाई तक नहीं; सबकुछ गीला पड़ा। कण्डील के ऊपर भी पानी गिर गया होगा। जलाने पर भी शायद नहीं जलेगा।" (क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'सूफी-साधना-पद्धति में गुरु का वही महत्व है, जो साधना की अन्य पद्धतियों में है' - किसका कथन है?
2. 'सत्यवतीकथा' का रचनाकार कौन है?
3. 'कुणाल' किसकी रचना है?
4. 'अनारो' किस महिला रचनाकार का प्रतिनिधि उपन्यास है?
5. 'कव्वे और कालापानी' किसका कहानी संग्रह है?
6. रोमान यॉकोब्सन किस वाद से संबद्ध रहा?
7. 'यूनिवर्सल ग्रामर' किसकी रचना है?
8. 'कुवलयानंद' किसकी रचना है?
9. 'बेकसी का मजार' किसका उपन्यास है?
10. भक्ति को रस रूप में किसने प्रतिष्ठित किया?
11. गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी है - किसका कथन है?
12. कवि स्वयंभू किस भाषा के कवि थे?
13. रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार - किसकी उक्ति है?
14. नाथ साहित्य के आरंभकर्ता किसे माने जाते हैं?
15. 'सिंदूर की होली' किसका नाटक है?
16. 'केरल की भक्ति साधना' किसकी आलोचनात्मक कृति है?
17. हिंदी का प्रथम एकांकी किसे माना जाता है?
18. 'नूतन ब्रह्मचारी' किसकी रचना है?
19. शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक कौन है?
20. 'ब्रजमाधुरीसार' किसका ग्रंथ है?

उत्तर

1. नगेंद्र
2. ईश्वरदास
3. सोहनलाल द्विवेदी
4. मंजुल भगत
5. निर्मल वर्मा
6. रूसी रूपवाद
7. नॉम चोम्स्की
8. अप्पय दीक्षित
9. प्रतापनारायण श्रीवास्तव
10. रूप गोस्वामी
11. रामचंद्र शुक्ल
12. अपभ्रंश
13. चिंतामणि
14. गोरखनाथ
15. लक्ष्मीनारायण मिश्र
16. डॉ.टी.एन.विश्वंभरन
17. एक घूँट
18. बालकृष्ण भट्ट
19. वल्लभाचार्य
20. वियोगीहरि

सभा की परीक्षाओं एवं सुगम हिन्दी परीक्षाओं के रैंक
जेताओं को पुरस्कार वितरण के विविध दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-09-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

SEPTEMBER 2024

Vol. No. 61, Issue No.06
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

आचार्या (बी.एड) कॉलेज के छात्रों की खेलखूद-प्रतियोगिता के दृश्य

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam